thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
रविवार, 04 जनवरी 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 04 जनवरी 2015 से 10 जनवरी 2015
पौ.शु. 14 ● वि० सं०–2071 ● वर्ष 79, अंक 138, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 191 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,115 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य समाज, महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल, सैक्टर-6, पंचकूला का 17वाँ वार्षिक समारोह सम्पन्न

आर्य समाज, महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल, सैक्टर–6 पंचकूला का 17वाँ वार्षिक समारोह बड़ी धूम–धाम से मनाया गया। स्वामी वेद प्रकाश के ब्रह्मत्व में प्रतिदिन प्रातः काल यज्ञ, हवन, भजन उपदेश का कार्यक्रम हुआ। चण्डीगढ़, पंचकूला, मोहाली से सैकड़ों आर्यजन व स्थानीय डी.ए.वी. संस्थाओं के प्रिंसीपल प्रतिदिन सायंकाल वेदोपदेश में भाग लेते रहे। प्रथम दिवस पूज्यपाद स्वामी वेद प्रकाश जी ने वेदोपदेश देते हुए जीवन को उत्थान की ओर अग्रसर करने का संदेश दिया। डॉ.पुनीत बेदी ने अपने उद्‌बोधन में इस कार्यक्रम की भूरि–भूरि प्रशंसा की और सब लोगों को सदैव वेदों की राह पर चलने की प्रेरणा दी।

दूसरे दिवस श्रीमान हंसराज गंधार जी इस कार्यक्रम के अध्यक्ष पद पर सुशोभित रहे। अपने अध्यक्षीय विचार व्यक्त करते हुए गंधार जी ने वेदों पर आधारित जीवन को सरलतम ढंग से व्यतीत करने पर प्रकाश डाला।

तीसरे दिन प्रातः काल 101 कुंडीय गायत्री महायज्ञ का आयोजन किया गया। मुख्य समारोह प्रारंभ होते ही आर्य समाज, महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल, की प्रधाना जया भारद्वाज जी ने सभी उपस्थित आर्य संन्यासी, वैदिक विद्वानों, डॉ. कृष्ण सिंह आर्य; भजनोपदेशक पंडित भीष्म आर्य सभी आर्य भाई–बहनों तथा प्रिंसीपलों का अभिनन्दन किया।

आर्य युवा समाज के सदस्यों ने महर्षि देव दयानंद के जीवन पर आधारित भजन प्रस्तुत करके लोगों को आत्मविभोर कर दिया। मुख्यवक्ता डॉ. कृष्ण सिंह आर्य जी ने भगवान के सच्चे स्वरूप व कर्म व्यवस्था पर विस्तार से सुंदर विचार रखे। पूज्यपाद स्वामी वेदप्रकाश जी ने वेदों की ओर चलने की प्रेरणा दी। आर्य समाज के कोषाध्यक्ष श्री प्रकाश चंद ध्यानी जी ने सभी उपस्थित आर्यजनों व स्थानीय डी.ए.वी. संस्था से आए हुए प्रिंसीपल बंधुओं को इस समाज के बहुयामी कार्यक्रम से अवगत कराया।

अंत में आर्य समाज की प्रधाना जया भारद्वाज जी ने सभी का आभार एवं धन्यवाद किया तथा भविष्य में इसी प्रकार सहयोग की कामना की। शांति पाठ के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ।

बी.बी. के डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन, अमृतसर में हुआ आर्यरत्न श्री पूनम सूरी जी का विशेष-व्याख्यान

बी.के डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन, लारेंस रोड, अमृतसर द्वारा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, पंजाब के तत्त्वावधान में आर्यरत्न श्री पूनम सूरी जी के 'विशेष व्याख्यान' का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का शुभारंभ ज्योति प्रज्ज्वलन एवं वैदिक–मंत्रोच्चारण से हुआ। आर्यरत्न श्री पूनम सूरी (प्रधान, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति, नई दिल्ली) ने *'प्रेसेशन मैंनेजमेंट ऑफ डी.ए.वी.'* विषय पर व्याख्यान देकर उपस्थिति को समाज–कल्याण–हेतु नई दिशा प्रदान की। उन्होंने पंजाब की समस्त डी.ए.वी. संस्थाओं के प्राचार्यों, शिक्षकों, आर्यसमाजी पदाधिकारियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि "आप अपनी ऐसी वास्तविक पहचान बनाएँ कि जो चार करोड़ आँखें आपको देख रही हैं, वे देखें कि आप महर्षि दयानन्द, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज आदि के सत्यवादिता, दृढ़–संकल्प, त्याग, समर्पण, श्रेष्ठता, मानवता आदि आदर्शों

पर चल रहे हैं। उन्होंने कहा कि हमें यह सदैव याद रखना चाहिए कि 'आर्य समाज' हमारी माँ है।"

श्री जे.पी शूर (मंत्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, पंजाब एवं निदेशक पी.एस–1) ने श्री पूनम सूरी जी का हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन किया और कहा कि "भारत के समस्त आर्यसमाज और डी.ए.वी. संस्थाएँ अत्यंत सौभाग्यशाली हैं कि उन्हें कर्मठ योद्धा माननीय प्रधान श्री पूनम सूरी जी मार्गदर्शन प्राप्त है।

प्राचार्या डॉ. (श्रीमती) नीलम कामरा ने कहा कि "श्री पूनम सूरी जी के प्रेरणादायी एवं उत्साहवर्धक व्यक्तित्व एवं दिशा निर्देशानुसार पंजाब के समस्त आर्य समाज एवं डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाएँ समस्त समाज में वैदिक, शैक्षणिक एवं तकनीक शिक्षा और संस्कृति का प्रचार–प्रसार कर रही हैं।

इस अवसर पर श्री बी.के मित्तल, श्री जगदीश साहनी कपूर, श्री जे.के लूथरा डॉ. वी.पी लखनपाल, श्री जे.पी शूर, डॉ. सतीश शर्मा, श्री एम.एल ऐरी, डॉ. (श्रीमती) नीलम कामरा, डॉ. मनचंदा, श्री ओम प्रकाश महाजन, श्री राकेश मेहरा, श्री इन्द्रपाल आर्य, श्री कुन्दन लाल, श्री अरविन्द घई बी.बी शर्मा, प्रिं. के. एन.कौल, श्रीमती पी.पी शर्मा (रिजनल डायरेक्टर), प्रिं रेखा भारद्वाज, डॉ. अजय सरीन, डॉ. भुल्लर, प्रि. पुष्पिन्दर वालिया, श्री मोहन लाल, प्रिं. अजय बेरी, प्रिं. नीरा शर्मा, प्रिं. अंजना गुप्ता और श्री सहदेव आदि ने आर्यरत्न श्री पूनम सूरी जी और श्रीमती मनी सूरी जी का भव्य स्वागत किया। बठिंडा से पधारकर स्वामी सूर्यदेव जी ने समस्त उपस्थिति को अपना वरद् आशीर्वाद दिया।

श्री बी.के मित्तल जी ने पंजाब प्रांत भर से आए हुए समस्त प्राचार्यों, शिक्षकों, आर्यसमाजो के पदाधिकारियों, सदस्यों एवं अन्य प्रतिष्ठित लोगों का हार्दिक धन्यवाद किया।

thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 04 जनवरी, 2015 से 10 जनवरी, 2015

यज्ञ रचा, दान कर

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

न त्वां शतं चन ह्रुतो, राधो दित्सन्तमामिनन्।
यत् पुनानो मखस्यसे।।

ऋग् ६.६१.२७

ऋषिः **अमहीयुः आङ्गिरसः**। देवता **पवमानः सोमः**। छन्दः **गायत्री**।

● (हे आत्मन्!), **(राधः)** धन को, **(दित्सन्तं)** दान करना चाहते हुए, **(त्वा)** तुझे, **(शतं चन)** सौ भी, **(ह्रुतः)** कुटिल वृत्तियाँ व कुटिल जन, **(अ आमिनन्)** हिंसित अर्थात् मार्ग–च्युत न कर पायें, **(यत्)** जब, **(पुनानः)** (स्वयं को) पवित्र करता हुआ। **(तू)**, **(मखस्यसे)** यज्ञ रचाता है।

● हे पवमान सोम! हे स्वयं को तथा मन, बुद्धि आदि को पवित्र करने वाले सात्विक–वृत्ति जीवात्मन्! जब तू परोपकार का यज्ञ रचाता है और अपना धन किन्हीं सत्पात्र व्यक्तियों को या संस्थाओं को दान देने का संकल्प करता है, तब बहुत–सी कुटिल स्वार्थ–वृत्तियाँ और बहुत–से कुटिल मनुष्य तेरे उस दान–व्रत की हिंसा करना चाहते हैं और तुझे दान के मार्ग से विचलित करने का प्रयत्न करते हैं। स्वार्थ–वृत्ति कहती है कि सहस्त्र, दश सहस्त्र, पचास सहस्त्र, लाख, दो लाख रूपया तुम अन्यों को दान कर कर रहें हो, तो क्या स्वयं भूखे मरना चाहते हो? देखो, सब अपनी सम्पति बढ़ा रहे हैं; जो सहस्त्रपति है वह लक्षपति बन रहा है, जो लक्षपति है वह करोड़पति बन रहा है। उनके पास कई–कई कोठियाँ हैं, मोटरकारें हैं, सेवक हैं। क्या दान का ठेका तुमने ही लिया है? क्या तुम्हारे ही भाग्य में यह लिखा है कि स्वयं तो मोटा–झोटा पहनो, रूखा–सूखा खाओ, झोपड़ी जैसे मकानों में रहो और दूसरों पर धन लुटाओ। पहले अपनी और अपने कुटुम्ब की स्थिति सुधारो, फिर अन्यों की सुध लेना। हे आत्मन्! तू उस स्वार्थ–वाणी को मत सुन। तुझे दान करने के लिए उद्यत देख कई स्वार्थी परिचित मनुष्य भी आकर मिथ्या ही आलोचना करते हैं कि तुम जिस संस्था को दान करने जा रहे हो, उसकी आन्तरिक अवस्था को भी जानते हो? उनमें सब खाऊ–पिऊ बैठे हैं, तुम्हारा दिया हुआ दान उन्हीं के पेट में जाएगा। हे आत्मन्! तू उन उन स्वार्थी जनों के भी कुटिल परामर्श पर ध्यान मत दे। सौ प्रकार की स्वार्थ–भावनाएँ और सौ स्वार्थी–जन भी तुझे तेरे दान के संकल्प से विचलित न कर सकें।

हे मेरे आत्मन्! वेद–शास्त्रों की वाणी सुन, जो तुझे दान के लिए प्रेरित कर रही है। तू अपनी कमाई में से प्रतिदिन या प्रतिमास कुछ निश्चित प्रतिशत दान–खाते में डाल और उसे लोक–कल्याण में व्यय कर। दान से दक्षिणा पानेवाले का तो हित होता ही है, उससे भी अधिक हित और मंगल दाता का होता है, यह वैदिक संस्कृति की भावना है। इसके विपरीत, "अकेला भोग करनेवाला मनुष्य पाप का ही भोग करता है"।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

एक ही रास्ता

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी कि एक माला से जाप करने की विधि यह है कि जैसे मंदिर का घंटा लगातार ऊँचे स्वर में गूँजता है, इसी प्रकार ऊँचे स्वर से ओ३म् का उच्चारण कीजिए। बार–बार कीजिए। इस प्रकार कीजिए कि इसके अतिरिक्त और कोई ध्वनि आपको सुनाई न दे। लगातार गूँजती हुई, झँकारती हुई ध्वनि–ऐसा करने से दुनिया में जितना भी धन है, कितनी भी शक्ति है, जितनी भी प्रसिद्धि है, जितना आप चाहते हैं, उतनी आपको मिल जाएगी वह आपकी हो जाएगी।

जप के लिए तीन वस्तुओं की आवश्यकता होती है। पहली वस्तु है, 'तप'। दूसरी वस्तु है 'ब्रह्मचर्य' और तीसरी वस्तु है, श्रद्धा'। 'तप' का अर्थ है– शारीरिक साधना। 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ है– मानसिक साधना। और 'श्रद्धा का अर्थ है– आत्म–साधना।

हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक की व्याख्या करते हुए स्वामीजी ने बताया कि 'हितभुक्' का अर्थ है– ऐसी वस्तु खाओ जो आपके शरीर के लिए अच्छी है। केवल खाने के लिए मत जीओ, जीने के लिए खाओ। दूसरी बात 'मितभुक्' का अर्थ बताते हुए कहा कि अच्छी वस्तु खाओ, परंतु थोड़ी खाओ, मर्यादा में रहकर खाओ। मर्यादा से अधिक पीया हुआ अमृत भी विष है।

अब आगे...

परन्तु क्यों जी। मलाई खाओ तो कितनी? यदि आप दो सेर मलाई ही खा जाएँ, तीन सेर रबड़ी पेट में डाल लें या डेढ़ सेर मक्खन ही चट कर जाएँ तो इससे शरीर को लाभ के स्थान पर हानि होगी। इसलिए वाग्भट्ट ने दूसरी बात कही मितुभुक्। अच्छी वस्तुएँ खाओ, परन्तु थोड़ी खाओ। मर्यादा में रहकर खाओ। मर्यादा से अधिक पिया हुआ अमृत भी विष हो जाता है। भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। गीता 6।17।।

अच्छी वस्तु खाओ। उचित मात्रा में खाओ। पेट में चार रोटियों की जगह हो, तो दो रोटियाँ खाओ। तो दो रोटियों की जगह पानी और हवा के लिए रहने दो। इसको कहते हैं उचित खाना।

परन्तु मेरी इन माताओं से पूछो कि उचित भोजन क्या है, तो ये कहेंगी– चार रोटी की जगह हो तो छः रोटियाँ खाना ही उचित है। यह बात वे अपने लिए नहीं कहतीं, अपने श्रीमानों के लिए कहती हैं। श्रीमान जी दफ्तर या दुकान से घर आए, श्रीमती जी ने बहुत–सी स्वादवाली वस्तुएँ उनके लिए बना हैं। अब वे ज़ोर दे–देकर कहती हैं, एक और खाओ, एक और खाओ। खिलाओ भाई, अवश्य खिलाओ, परन्तु यह भी सोचो कि अधिक खाने से शक्कर की बीमारी हो जाएगी। गूट, फूट, मूट, पता नहीं क्या–क्या हो जाएगा। उस समय क्या करोगे?

हमारे लाहौर में था एक दुर्गा मोटा। एक ताँगे में अकेला बैठता था; आधा आगे, आधा पीछे। युद्ध के दिनों में राशन आरम्भ हुआ तो उसने प्रार्थना की कि राशन के आटे से जितनी रोटियाँ बनती हैं, मेरा उनसे निर्वाह नहीं होता। सर सिकन्दर हयात ने उसे अपने पास बुलाया। उसने कहा, "आज मैं देखूँगा तू कितना खाता है।" नौकरों को आज्ञा दी कि वे सेर–भर आटे की रोटियाँ बनाएँ। बनी रोटियाँ। दुर्गा सारी रोटियाँ खा गया; बोला, "अभी तो आधी दूर तक पहुँचा हूँ, इतनी ही रोटियाँ और हों तो भूख मिटेगी।"

सो भाई मेरे! इस प्रकार से खाने का लाभ क्या! उतना खाओ जितना पच जाए; इससे अधिक खाओगे तो हानि होगी। मैं कश्मीर में था तो वहाँ सुना कि किंगकाँग नाम का पहलवान आया है। लोगों ने मुझे बताया कि वह प्रातः नाश्ते में तीन दर्जन अंड़े खाता है, दो डबल रोटियाँ खाता है, एक पाव मक्खन और एक बाल्टी चाय, और फिर इसके बाद दोपहर को भी इसी प्रकार खाता है, शाम को भी, रात्रि को भी। मैंने पूछा, "इतना खा के करता क्या है?" पता चला कि कुश्ती में दूसरों को गिरा देता है। मैंने हँसते हुए कहा, "जो इतना खाएगा वह दूसरों को गिराएगा ही, उन्हें उठाने का कार्य उससे न हो सकेगा।"

अन्ततः इस प्रकार खाने का लाभ क्या है? हर समय खाओ, खाओ, खाओ। क्या इसलिए बना है मनुष्य? यह प्रातः को चाय, फिर बिस्तरे में चाय, फिर कॉफी, और फिर चाय, और फिर चाय, और फिर चाय पी, चाय पी। इसी के लिए क्या मानव दुनिया में आया था। अरे भाई पेट की यह देगची है, इसमें एक सीमा से अधिक नहीं आता। किस समय क्या डालना चाहिए, यह सोचकर डालो। हर समय डालते न चले जाओ।

thearyasamaj.org

एक माँ दाल बना रही थी। चूल्हे पर देगची रखकर दो मुट्ठी दाल उसने देगची में डाल दी। आग जलने लगी। दाल अभी कुछ पकी थी कि दो अतिथि आ गए। उसने दो मुट्ठी दाल और देगची में डाल दी। अभी यह दूसरी दाल अधपकी थी कि तीन अतिथि और आ गए। उसने तीन मुट्ठी दाल और देगची में डाल दी। अब बताओ, इस दाल का क्या बनेगा। क्या वह कभी पकेगी? क्या वह कभी ठीक होगी? कुछ बहुत अधिक पक जाएगी, कुछ थोड़ी पकेगी, कुछ कच्ची रह जाएगी तो हानि होगी। इसलिए वाग्भट्ट ने कहा– मित्भुक्। खाओ अवश्य, थोड़ा खाओ, मर्यादा के अनुसार खाओ।

परन्तु केवल हितभुक् और मितभुक् से कार्य नहीं बनता। मनुष्य यदि ऊपर उठना चाहता है, इस जीवन को उस लक्ष्य की ओर ले जाना चाहता है, जिसके लिए यह मिला है, तो आवश्यक है कि वह ऋत्भुक भी बने। अच्छी वस्तुएँ खाए, परन्तु वे वस्तुएँ खाए जो उत्तम कमाई से पैदा की गईं हों। कोई वस्तु ठीक कमाई से मिली या नहीं, इसका बहुत मनुष्यों को पता नहीं लगता। जो लोग सदा पाप का अन्न खाते रहे हों। उन्हें पाप और पुण्य में अन्तर दिखाई नहीं देता। सफेद चाँद पर लगा हुआ धब्बा दिखाई देता है। हम कहते है धब्बा लग गया? वह तो साधना से, ज्ञान से, प्रयत्न से ज्ञात होता है। पूज्य महात्मा हंसराज जी एक बार हरिद्वार के मोहन आश्रम में ठहरे थे। एक वानप्रस्थी उनके पास ही एक कमरे में रहता था। एक दिन यह वानप्रस्थी महात्मा जी के पास आया और जोर–जोर से रोने लगा। महात्मा जी ने पूछा, "क्या हुआ आपको?" वह बोला "मैं लुट गया महात्मा जी, मेरी उम्रभर की कमाई नष्ट हो गई!" महात्मा जी बहुत घबराए। पूछने पर पता लगा कि वह वानप्रस्थी पिछले कई वर्षों से ईश्वर–भक्ति के मार्ग पर चलता हुआ ध्यान और उपासना की सीढ़ी तक पहुँच चुका था। रात्रि के समय अपने कमरे में बैठ जाता वह। भगवान् का ध्यान करता, ईश्वर की शीलत ज्योति उसे दिखाई देती। उसमें आनन्द से मस्त होकर वह घण्टों बैठा रहता। परन्तु कल रात उसके साथ एक अद्भुत घटना घटी। रोते हुए उसने कहा, "मैं ध्यान में बैठा था, महात्मा जी, तो ऐसा प्रतीत हुआ कि रोशनी में लाल दुपट्टेवाली एक नौजवान लड़की खड़ी है। मैंने घबराकर आँखें खोल दीं। समझा कुछ भूल हो गई है; फिर प्राणायाम किया, फिर ध्यान से ज्योति को देखा, परन्तु वह लड़की अब भी वहीं थीं। मैं उसे जानता नहीं, परन्तु वह बार–बार मेरे पास आकर खड़ी हो जाती है। मैंने बार–बार मुँह धोकर प्राणायाम करने का प्रयत्न किया है, बार–बार उसे हटाने का प्रयत्न किया है परन्तु रोशनी में उसके अतिरिक्त और कुछ मुझे दिखाई नहीं देता। मेरी तो उम्र–भर की कमाई लुट गई! मैं तो कहीं का रहा नहीं! पता नहीं, मुझे क्या हो गया है।" यह कहता जाता था और रोता जाता था। महात्मा जी ने पूछा, "किसी बुरे व्यक्ति की संगत में तो नहीं बैठे? कोई बुरी पुस्तक तो नहीं पढ़ी?" उसने कहा, "ऐसा कुछ नहीं किया मैंने।" महात्मा जी ने कहा, "कल तुम आश्रम से बाहर गए होगे?" वह बोला, "गया था, एक भण्डारे में। एक सेठ साहब आए हैं, उन्होंने भण्डारा किया था, वहाँ खाना खाने गया था।" महात्मा जी ने कहा, "जाकर पता लगाओ, वह सेठ कौन है, क्यों उसने भण्डारा किया है?" वानप्रस्थी गया। पता लगाकर उसने बताया कि सेठ एक शहर का रहने वाला है। (उसका नाम लेना नहीं चाहता) वहाँ उसने अपनी नौजवान बेटी को एक बूढ़े के पास दस हज़ार रुपए में बेच दिया है। दो हज़ार रुपए लेकर वह हरिद्वार आया है कि पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए भण्डारा कर दे। महात्मा जी ने इस बात को सुनकर कहा, "यही वह नौजवान लड़की है जो तुम्हें दिखाई देती है। तुमने जो कुछ खाया, वह पुण्य–भाव से दिया हुआ दान नहीं था; पाप की कमाई का एक भाग है– उस महाभाग्य लड़की का मूल्य। जब तक वह अन्न तुम्हारे शरीर से नहीं निकलेगा, तब तक उस लड़की का दिखाई देना बन्द न होगा।

यह है पाप का अन्न खाने का परिणाम। आत्मा इससे गिरती है। आगे बढ़ता हुआ मनुष्य पीछे हटता है। इसलिए वाग्भट्ट ने कहा, केवल हितभुक् और मित्भुक होना ही पर्याप्त नहीं। मानव यदि हर प्रकार के रोगों से बचना चाहता है तो उसे ऋत्भुक भी होना चाहिए।

हितभुक्, मितभुक् और ऋतभुक् बनकर ही मनुष्य तप के इस मार्ग को पार करता है, जो ओ३म् का जाप करते समय शारीरिक साधना के लिए आवश्यक है।

परन्तु जैसा मैंने पहले कहा, शारीरिक साधना या तप तो पहली सीढ़ी है। इसके बाद दूसरी सीढ़ी है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य या मानसिक साधना के लिए तीन बातें आवश्यक हैं– स्वाध्याय, संत्संग और सेवा।

स्वाध्याय क्या है? वेद, उपनिषद्, गीता, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सत्यार्थप्रकाश और इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों को प्रतिदिन पढ़ना, प्रतिदिन उन पर विचार करना, यह स्वाध्याय है। थोड़ा पढ़ो या अधिक पढ़ो, पढ़ो अवश्य। आजकल तो लोग प्रातःकाल समाचारपत्रों को लेकर बैठ जाते हैं। मैं समाचार पढ़ने का विरोधी नहीं। अखबार यदि चाहें तो देश का बहुत सुधार कर सकते हैं, परन्तु आजकल तो अखबार नारद मुनि का पार्ट अदा करते हैं। आज पंजाब में जो बैचेनी है, सीमा और भाषा–सम्बन्धी जो झगड़े हैं, इसका कारण पंजाब के कुछ समाचारपत्र ही तो हैं। ऐसे समाचारपत्रों को भी यदि आप पढ़ना चाहते हैं तो पढ़िए, परन्तु स्वाध्याय का वास्तविक अर्थ उन ग्रन्थों का पाठ करना है, जो सन्तों, महात्माओं, ऋषियों और योगियों ने लिखे हैं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जो आदमी प्रतिदिन अच्छे ग्रन्थों का पाठ करता है, उसे उतना ही पुण्य मिलता है, जितना कोई व्यक्ति धन, अन्न, हीरे, सोने मोती और पशुओं से भरी हुई सारी पृथिवी को दान करके प्राप्त करता है।

महात्मा हंसराज की एक बात याद आती है मुझे। अपना जीवन उन्होंने दान दे दिया। बड़े भाई 50 रु. मासिक देते थे। उस पर निर्वाह करते थे वे। एक बार भाई अप्रसन्न हो गए। उन्होंने सहायता के रुपए देना बन्द कर दिया। महात्मा जी के पास कोई पूँजी तो थी ही नहीं। घर में कुछ भी नहीं था। केवल छः आने थे उनके पास। घर में खाने को भी नहीं था। तीन दिन इसी प्रकार बीत गए। पत्रों में उन दिनों महात्माओं के विरूद्ध लेख छप रहे थे। घबराकर उन्होंने सोचा– 'मैं यह कौन–से मार्ग पर चल रहा हूँ? इसमें दुःख ही दुःख है, सुख का नाम भी नहीं, तब उसे छोड़ क्यों न दूँ?' इस विचार के उत्पन्न होते ही घबराहट के साथ अपने छोटे से कमरे में टहलने लगे, इधर से उधर, उधर से इधर। चैन नहीं। मछली जैसे पानी के बिना तड़पती है, ऐसे उनका दिल तड़प रहा था। तभी वे अपने कमरे में रखी उस अलमारी के पास पहुँच गए जिसमें पुस्तकें रखी थीं। एक किताब को उन्होंने निकाला। उसक एक पृष्ठ खोला; वहाँ लिखा था–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
गीता. 2/47।।

महात्मा जी ने मुझे बताया कि इन शब्दों को पढ़ते ही उनकी घबराहट दूर हो गई। ऐसा ज्ञात हुआ कि जैसे सच्चा और सीधा रास्ता मिल गया है। ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई सामने खड़ा कहता है, "अरे, तू घबरा गया तो क्यों? तेरा काम केवल काम करना है, उसके फल की चिन्ता करना नहीं। फल को भगवान् पर छोड़ दो, आगे बढ़ो!" उन्होंने बताया कि फिर कभी डगमगाना नहीं पड़ा, फिर कभी बैचेनी नहीं आई। यह है स्वाध्याय का फल। परन्तु स्वाध्याय केवल यही तो नहीं, एक और बात भी है।

अब समय हो गया पूरा। यह बात क्या है, यह कल बताऊँगा।

ओ३म् तत् सत्।

तीसरा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो!

कल मैं आपको बता रहा था कि ओ३म् की तीन मात्राओं की उपासना कैसी होती है। अ, उ, म्– ये तीन मात्राएँ इसमें हैं। तीन मात्राओं से, तीन विधियों से इसकी उपासना होती है। यह भी बताया था मैंने कि प्रश्नोपनिषद् के ऋषि ने उपासना के साथ किन–किन शर्तों को पूरा करने के लिए कहा। तीन साधनों का वर्णन कर रहा था मैं– तप, ब्रह्मचर्य तथा श्रद्धा। तप है शारीरिक साधना, ब्रह्मचर्य है मानसिक साधना, श्रद्धा है आत्मिक साधना। शारीरिक साधना का अर्थ यह है कि शरीर स्वस्थ होना चाहिए। इसके लिए तीन बातें आपको बताईं– हितभुक्, मितभुक, ऋतभुक् । अच्छी सात्त्विक वस्तुएँ खाओ, थोड़ा खाओ, नेक कमाई से खाओ। ब्रह्मचर्य का और मानसिक साधना का मार्ग भी बताया– स्वाध्याय, संत्संग और सेवा। ब्रह्मचर्य का मन से गहरा सम्बन्ध है। मन ठीक हो तो मैं ब्रह्मचारी हूँ, नहीं तो फिर ब्रह्मचर्य का अभिमान करने का लाभ नहीं। ब्रह्मचर्य का एक अर्थ उस वीर्य की रक्षा करना है जो भोजन के पचने के पश्चात् शरीर में सात अवस्थाओं के बाद बनता है। परन्तु यह केवल एक अर्थ है। दूसरा अर्थ है ब्रह्म में विचरना; ऐसा अनुभव करना कि ऊपर–नीचे, दाएँ–बाएँ, आगे–पीछे हर ओर ब्रह्म ही ब्रह्म है। ऐसा विश्वास जिसको हो जाए, जिसके हृदय में विश्वास जाग उठे कि महामहिमावाली माँ की गोद में बैठा है, जैसे अपनी माता की गोद में हो, तो उसके लिए डर और भय क्या है? उसके मन को डिगानेवाला कौन है? डरानेवाला कौन है?

मैंने आपको यह भी बताया कि स्वाध्याय, सत्संग और सेवा का अर्थ है, उससे किस प्रकार लाभ होता है, जिस प्रकार स्वाध्याय करनेवाला ठीक उस समय गिरावट से बच जाता है जबकि उसके पाँव डगमगाने लगते हैं। वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, गीता, रामायण, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सत्यार्थप्रकाश और इसी प्रकार के दूसरे ग्रन्थों को प्रतिदिन पढ़ना स्वाध्याय है, परन्तु जैसा कि कल मैंने कहा था, यह स्वाध्याय का केवल एक अर्थ है; दूसरा अर्थ है अपने आपको पढ़ना, अपने–आपको देखना कि यह जो अपना–आपा है, यह ऊपर चला जा रहा है या नीचे गिर रहा है? शुद्ध और पवित्र हो रहा है या गन्दा और मलिन? परन्तु यह अपना–आपा क्या है? यह स्थूल शरीर नहीं जिसे हम प्रतिदिन माँजते हैं और जो अन्त में मिट्टी में मिल जाता है। आत्मा भी नहीं क्योंकि वह न मैला होता है न साफ़, सर्वदा एक–सा रहता है, अपितु इन दोनों के साथ खड़ा सूक्ष्म शरीर जो जन्म–जन्म से आत्मा के साथ चला आया है, जन्म–जन्म तक इसके साथ चलता रहेगा। सृष्टियाँ बनती हैं और समाप्त हो जाती हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे बनते हैं और महाप्रलय में नष्ट हो जाते हैं, पर यह सूक्ष्म शरीर तब तक चलता है जब तक इसके भोग समाप्त नहीं हो जाते।

शेष अगले अंक में....

स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गांधी

● जगदीश महेश्वरी

महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक "सत्य के प्रयोग" में कई जगह जिक्र किया है जो इस प्रकार है– रोलेट–एक्ट के विरोध में सन् 1919 दक्षिण में थोड़ी यात्रा करके 4 अप्रैल को मैं बम्बई पहुँचा, शकंरलाल बैंकर का तार था कि छठी तारीख मनाने के लिए मुझे बम्बई मौजूद होना चाहिए।

पर इससे पहले दिल्ली में तो हड़ताल 30 मार्च के दिन ही मनाई गई थी। दिल्ली में स्व. श्रद्धानन्द जी और मरहूम हकीम साहब अजमल खाँ की दुहाई फिरती थी। 6 अप्रैल तक हड़ताल की अवधि बढ़ाने की सूचना दिल्ली देर से पहुँची थी। दिल्ली में उस दिन जैसी हड़ताल हुई वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। ऐसा जान पड़ा मानों हिन्दू और मुसलमान दोनों एक दिल हो गए हैं। श्रद्धानन्द जी को जामा मस्जिद निमंत्रित किया गया और उन्हें वहाँ भाषण करने दिया गया। अधिकारी यह सब सहन नहीं कर पाए। रेलवे स्टेशन जाते हुए जुलूस को पुलिस में रोका और गोलियाँ चलाई। कितने ही लोग घायल हुए। कुछ जान से मारे गए दिल्ली में दमन का दौर–दौरा शुरू हुआ। श्रद्धानन्द जी ने मुझे दिल्ली बुलाया, मैंने तार दिया कि बम्बई में छठी तारीख मनाकर तुरन्त दिल्ली पहुँचूँगा।

8 अप्रैल को मैं दिल्ली–अमृतसर जाने को रवाना हुआ। पलवल आया। महादेव मेरे साथ थे। उनसे मैंने दिल्ली जाकर श्रद्धानन्द जी को खबर देने और लोगों को शान्त रखने को कहा, मैंने महादेव से यह भी कहा कि वे लोगों को बता दें कि सरकारी आदेश का अनादर करने के कारण जो सजा होगी उसे भोगने का मैंने निश्चय कर लिया है, साथ ही लोगों को यह समझाने को कहा कि मुझे सजा होने पर भी उनके शान्त रहने में हमारी जीत है।

मुझे पलवल पर पुलिस ने उतार लिया व बम्बई लाया गया। खबर मिली कि पायधुनी पर भारी भीड़ है। मुझे यहाँ लाया गया। लेकिन भीड़ न मुझे देख पा रही थी न सुन पा रही थी। पुलिस ने भाला घुमाकर व घोड़े दौड़ाकर भीड़ को तितर–बितर किया।

वायसराय ने बहुत दिन बाद 17 अक्टूबर 1919 को मुझे दिल्ली व पंजाब जाने की अनुमति दी। 13 अप्रैल 1919 को जंलियावाला कांड की जांच के लिए हंटर कमेटी बनाई गई थी। वायसराय अपनी जाँच के बाद ही गांधी जी को पंजाब केसरी सोच रहे थे।

पंजाब में बहुत से नेताओं के जेल में होने के कारण मुख्य नेताओं का स्थान पं. मालवीय जी, पं. मोतीलाल नेहरू और स्व. स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ले रखा था। मुझे तुरन्त सबने अपना लिया। और यह निश्चय हुआ कि इंटर–कमेटी का बहिष्कार किया जाय व जाँच के लिए कांग्रेस की कमेटी बनाई जाए। इसका पूरा भार मेरे ऊपर आ पड़ा। इसकी रिपोर्ट तैयार हुई व एक भी बात झूठी नहीं साबित हुई।

तभी मुझे नवम्बर में दिल्ली बुलाया गया। हिन्दू मुसलमानों की एक संयुक्त सभा थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी उपसभापति थे। नवम्बर में सभा हुई। दिल्ली में खिलाफत के सम्बन्ध में उत्पन्न स्थिति पर विचार हुआ। इस सभा में श्रद्धानन्द जी उपस्थित थे। उपस्थिति अच्छी थी लेकिन हजारों लोगों के उमड़ने की उम्मीद न थी। लोग गोरक्षा को भी जोड़ना चाहते थे। मैंने कहा कि खिलाफत के लिए मिलने वाली मदद के बदले में मुसलमान गोवध बन्द करें यह उनके लिए शोभास्पद नहीं होगा। स्वदेशी व्रत पर भी विचार हुआ। मैंने फिलहाल विरोध किया। तब तक खादी का जन्म नहीं हुआ था। एक भी आदमी ऐसा नहीं था जो ब्रिटिश कपड़ा न पहने हो। यह भी मालूम पड़ा कि हिन्दी–उर्दू ही राष्ट्रभाषा बन सकती है।

दिसम्बर 1919 में अमृतसर में कांग्रेस की सभा हुई। पं. मोतीलाल नेहरू–सभापति थे व स्वामी श्रद्धानन्द स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। जेल में लाला हर किशलाल व अली भाई रिहा होकर अधिवेशन में आ गए। सबके हर्ष की सीमा न रही।

इस मीटिंग में मेरा बड़े–बड़े नेताओं से मतभेद हो गया लोकमान्य तिलक देशबन्धु चितरंजन के साथ थे। मालवीय जी तटस्थ थे। बाद में मालवीय जी के प्रयत्न से समझौता हो गया। तालियों की गड़गड़ाहट से मंडप गूंज उठा। अधिवेशन में जलियांवाला कांड का स्मारक बनाने व कांग्रेस का नया विधान बनाने का काम भी मेरे ऊपर आ पड़ा।

नोट–

(1) रोलेट–एक्ट–प्रथस विश्व–युद्ध नवम्बर 1919 को समाप्त हुआ। हिन्दुस्तानियों ने अपने लोगों को सेना में भेजकर व धन से अंग्रेजों की खूब सहायता की थी। अंग्रेजी सरकार की कुछ अधिक स्वतंत्रता देने की वारी थी। लेकिन हिन्दुस्तानियों पर रोलेट–एक्ट डाल दिया– 'इसके अनुसार किसी भी भारतीय को गिरफ्तार किया जा सकता था और बिना कोई कारण बताए सजा दी जा सकती थी।' गांधी जी ने विरोध स्वरूप पूरे देश को हड़ताल करने की सलाह दी। उस दिन सब उपवास करें और कामकाज बन्द रखें। पहले 1919 की 30 मार्च रखी गयी फिर बाद में 6 अप्रैल कर दी गयी। दिल्ली में समाचार नहीं पहुँच पाया और 30 मार्च को ही जोरदार हड़ताल हो गयी।

(2) जलियांवालाकांड–जलियांवाला बाग अमृतसर में एक आयताकार स्थान है जो चारों ओर बनीं इमारतों से घिरा हुआ है। 13 अप्रैल 1818 को रोलेटएक्ट व सरकार के अन्य दुर्व्यहार के लिए सभा थी। साढ़े चार बजे शाम को, लगभग 15–20 हजार आदमी इक्ट्ठे हुए थे। अमृतसर का चार्ज ब्रिगेडियर–जनरल–रेजीनोल ई. एच डायर के पास था। बाग में घुसने व निकलने की कुछ ही रास्ते थे। डायर 25 गुरख सैनिक व 25 बलूची सैनिक व चालीस सैनिक दो हथियारों से लदी Armed-car कारों के साथ पहुँच गया। भीड़ को बिना चेतावनी दिए उसने 10 मिनट तक गोलियां बरसाईं। 378 लोग मारे गए वह 1138 घायल हुए। 1950 गोलियों से 1516 पर असर पड़ा। इस घटना का देश पर ही नहीं पूरी दुनियां पर असर पड़ा। डायर को रिटायर (VRs) किया गया, उसके साथियों ने 26000 पौंड उसे इक्ट्ठा करके दिए।

789, शहीद नगर
समसाबाद रोड़

(1) रोलेट–एक्ट–प्रथस विश्व–युद्ध नवम्बर 1919 को समाप्त हुआ। हिन्दुस्तानियों ने अपने लोगों को सेना में भेजकर व धन से अंग्रेजों की खूब सहायता की थी। अंग्रेजी सरकार की कुछ अधिक स्वतंत्रता देने की वारी थी। लेकिन हिन्दुस्तानियों पर रोलेट–एक्ट डाल दिया– 'इसके अनुसार किसी भी भारतीय को गिरफ्तार किया जा सकता था और बिना कोई कारण बताए सजा दी जा सकती थी।' गांधी जी ने विरोध स्वरूप पूरे देश को हड़ताल करने की सलाह दी। उस दिन सब उपवास करें और कामकाज बन्द रखें। पहले 1919 की 30 मार्च रखी गयी फिर बाद में 6 अप्रैल कर दी गयी। दिल्ली में समाचार नहीं पहुँच पाया और 30 मार्च को ही जोरदार हड़ताल हो गयी।

सूर्योदय तथा सूर्यास्त

● मोहन लाल मगो

सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सूर्य बड़ा क्यों दिखाई देता है वैज्ञानिकों के अनुसार उस समय सूर्य की किरणें हल्की होती हैं। उसमें सूर्य पूर्ण रुप से दिखता है। जब सूर्य पूरी तरह उदित हो जाता है तो उसकी किरणों की रोशनी बहुत तेज् हो जाती है हमारी आँखें उस पर नहीं ठहरतीं। तब वह छोटा दिखाई देता है क्योंकि हम उसके भीतरी भाग को ही देख पाते हैं।

सूर्य पृथ्वी से 15 करोड़ किलोमीटर दूर है। सूर्य हाइड्रोजन तथा हीलियम से बना है। इसकी अन्दर की सतह बाहरी सतह से अधिक गर्म होती है।

सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी तक आने में आठ मिनट उन्नीस सैकेण्ड का समय लगता है।

शाम के समय प्रकाश के हल्के और कमज़ोर होने से सूर्य हमें स्पष्ट और पूरा दिखाई देता है परन्तु जब सूर्य दोपहर के समय पृथ्वी के ऊपर होता है उस समय उसकी तेजस्वी किरणें पृथ्वी की ओर आती है। उन तेज् किरणों के असर से हमें सूर्य का बाहरी भाग न दिख कर केवल अन्दर का ही भाग दिखाई देता है। इस दौरान सूर्य को देखना आँखों के लिए हानिकारक होता है। इस अवधि में सूर्य के आकार में भी बदलाव दिखता है जो वायुमण्डलीय दबाव के कारण से है।

ऊँचाई घटने पर परिवर्तन में ज्यादा फर्क दिखता है इसलिए ऊर्ध्ववतल छोटा हो जाता है जबकि क्षितिज तल बढ़ जाता है। इस लिए सूर्योदय तथा सूर्यास्त होते समय आकार बड़ा नजर आता है।

बाकी दिन सूर्य का आकार इसके विपरीत होता है।

पी–65, पाण्डव नगर
दिल्ली–110091

thearyasamaj.org

उत्कृष्ट शङ्का समाधान

● **स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक**

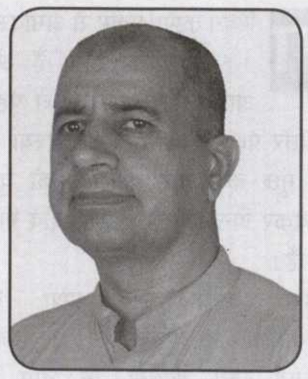

शंका–कई श्रेष्ठ व्यक्ति अपने सेवाभावी कार्यों के लिए जाने जाते हैं। परंतु उन्होंने कभी वेद के अनुसार ईश्वर की उपासना नहीं की। ईश्वर इन्हें दण्ड देगा या पुरस्कार?

समाधान– उन्होंने जितने काम अच्छे किए हैं, उतना तो उनको ईश्वर ईनाम देगा। और जो वेद के अनुकूल ईश्वर की उपासना नहीं की, उतना उनको दण्ड मिलेगा। वास्तव में 'कर्म न करने' का दण्ड नहीं होता। दण्ड होता है, 'निषिद्ध कर्म करने का।'

'ईश्वर की उपासना' विहित कर्म है। यह उन्होंने नहीं किया। इसलिए ईश्वर से जो आनंद मिलता है, वो इनको नहीं मिलेगा। और जो उन्होंने 'संसार की उपासना' की, यह निषिद्ध कर्म है। यह उन्होंने किया। इसका दण्ड मिलेगा। और वह दण्ड होगा–अविद्या, राग द्वेष आदि दोषों की वृद्धि, सकाम कर्म करना और बार–बार संसार में जन्म लेकर दुःखों को भोगना। यदि वे लोग वेद के अनुसार ईश्वर की उपासना भी करते , तो उन्हें पुरस्कार (मोक्ष) भी मिलता। अब मोक्ष नहीं मिलेगा।

शंका–छोटी बच्ची के साथ दुष्कर्म करना, छोटे बच्चों को पकड़कर अंग काटना, भीख मँगवाना आदि करने वालों के विरुद्ध भगवान अपनी शक्ति क्यों नहीं दिखाता? उन बच्चों ने क्या अपराध किया?

समाधान– उत्तर है–

● एक सिद्धांत है कि, व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र है। अगर कोई व्यक्ति चोरी करता है, डकैती करता है, लूटमार करता है, शोषण करता है। अंग–भंग करता है, अन्याय करता है, और ईश्वर उसका हाथ पकड ले तो क्या तब वो स्वतंत्र माना जाएगा? नहीं माना जाएगा।

● चाहे चोरी, अन्याय, शोषण या लूटमार कुछ भी करो। व्यक्ति कार्य करने में स्वतंत्र है। इसलिए ईश्वर तत्काल उस समय हाथ नहीं पकड़ता।

तीन घंटे की परीक्षा है। विद्यार्थी को प्रश्न–पत्र दे दिया। तीन घण्टे तक कुछ भी सही–गलत लिखो। मान लो, अध्यापक ने वहीं चक्कर मारते–मारते देख लिया कि वह गलत उत्तर लिख रहा है। तो क्या अध्यापक ने वहीं चक्कर मारते–मारते देख लिया कि वह गलत उत्तर लिख रहा है तो क्या अध्यापक उसका हाथ पकड़ लेगा कि तुम गलत मत लिखो? तीन घंटे तक आप (विद्यार्थी) कुछ भी लिखो, अपनकी मर्जी। इसी प्रकार से व्यक्ति कुछ भी करे, ईश्वर पर अपनी शक्ति नहीं दिखाता।

● कर्म करने में हम 'स्वतंत्र' हैं,फल भोगने में 'परतंत्र' हैं। जब फल देने का समय आता है, तब ईश्वर फल देता है। जैसे तीन घंटे पूरे होंगे, तभी तो नंबर मिलेंगे, बीच में नम्बर नहीं मिलते। बीच में उसका हाथ नहीं पकड़ा जाता है। उसके बाद में उत्तर पुस्तिका हमारे (परीक्षक के) पास में आएगी, फिर हमारी (परीक्षक की) मर्जी चलेगी। जो आपने किया उसके आधार पर नम्बर मिलेंगे।

वैसे ही हमारे जीवन के तीन घंटे तब पूरे होते हैं, जब मृत्यु आती है। पहला घंटा बचपन है, दूसरा जवानी है, तीसरा बुढ़ापा है। और उसके बाद यहाँ घंटी बजती है तो शांतिपाठ होता है (मृत्यु होती है), फिर नंबर मिलते है। ईश्वर अपनी शक्ति कब दिखाता है? जब उसका अवसर आता है, ईश्वर अपनी शक्ति दिखाता है।

● जिसने अच्छे कर्म किए, उसको ईश्वर मनुष्य बना देंगे। जिसने बदमाशी, उल्टे–सीधे काम किए। उसको सुअर, गधा, बिल्ली, मच्छर,उल्लू आदि बना देंगे।

● कुछ कर्मों का फल इसी जन्म में भी मिलता है और कुछ का आगे का मिलता है।

शंका–जब तक हम स्थूल (शरीरिक, वाचनिक) रूप से किसी पर प्रभाव नहीं डालते, तब तक गुनाह नहीं हो सकता। मन में एक पल के लिए बुरा विचार आया और अगले ही पल विचार बदल गया। तो विचार मात्र से पाप क्यों माना जाए अर्थात् बिना क्रिया के परिणाम या फल कैसे?

समाधान–हमने मन में कुछ बुरा विचार किया और अगले ही पल इस विचार को बदल दिया, यानि कोई बुरा विचार किया, लेकिन उसकी क्रिया नहीं की और फिर वो बुरा विचार मन से हटा दिया। हमारे विचारमात्र से कोई प्रभावित या सुखी–दुःखी नहीं होता तो इसमें पाप क्यों माना जाए? प्रश्न है।

● भले ही हमारे बुरे विचार से दूसरों को कोई नुकसान हुआ, वाणी से हमने कुछ नहीं कहा, शरीर से किसी पर कोई अत्याचार नहीं किया, केवल मन ही मन में बुरा सोचा। इससे दूसरों से प्रत्यक्ष रूप से कोई नुकसान नहीं हुआ, लेकिन हमारा जरूर हुआ।

अगर हम गलत योजना बनाते हैं, बुरी योजना बनाते हैं, तो इससे हमारे संस्कार अवश्य बिगड़ेंगे और आगे हम भविष्य में भी गलत योजनाएँ बनाएँगे और गलत काम करेंगे। हर बार ऐसा थोड़े होगा कि हमने योजना बनाई, और बदल दी। हर बार बदलेंगे नहीं। कई बार तो कर ही डालेंगे। तो हमारे विचार, संस्कार न बिगड़ें, इसलिए हमको मन में भी बुरी बात नहीं सोचनी चाहिए।

यहाँ एक और सावधानी रखने की बात यह है कि, मानसिक कर्म में दो स्थितियाँ हैं। एक स्थिति में तो केवल 'विचार' मात्र है, वो कर्म नहीं माना जाएगा। जबकि दूसरी स्थिति में, वो 'कर्म' भी माना जाएगा।

● पहली स्थिति क्या है? एक व्यक्ति ने मन में सोचा–झूठ बोलूँ, या नहीं बोलूँ? यहाँ नहीं बोलूँ? यहाँ दिमाग में दो पक्ष हैं कि, मैं झूठ बोलूँ, या फिर नहीं बोलूँ? यहाँ तक तो इसका नाम है –'विचार'। अभी यह कर्म नहीं बना। इसका कोई दंड नहीं है।

● अगर दो निर्णयों में से एक निर्णय कर लिया कि 'आज झूठ बोलूँगा'। ऐसा निर्णय कर दिया, तो यह 'कर्म' बन गया। इसका दंड जरूर मिलेगा। 'आज चोरी करूँगा', यदि मन में यह फैसला कर लिया, फिर बाद में चाहे हम शरीर से न करें, यानी योजना बदल दें, लेकिन एक बार योजना, इसलिए इसका दंड भी अवश्य मिलेगा। यह 'मानसिक–कर्म' है। इसका 'मानसिक–दंड' मिलेगा। इससे हमारे संस्कार बिगड़ेंगे।

● सावधानी रखें और गलत योजनाएं कतई नहीं बनाएँ। विचार गलत आते हैं, अच्छे आते हैं, वो आते ही रहते हैं। वो कोई बड़ी बात नहीं है। मन में उठने वाले प्रत्येक विचार का सतत परीक्षण और निरीक्षण करें कि, मैंने जो विचार उठाया, वह ठीक है या गलत? गलत है, तो उस पर लगाम (ब्रेक) लगाएँ। उसको तुरंत निकाल दें।

● जो ठीक विचार है, उसको मन में रखें। ठीक विचारों के अनुसार ही 'योजनाएँ' बनाएँ सिर्फ योजनाएँ ही नहीं बनाएँ 'आचरण' भी करें। बहुत सारे लोग सिर्फ योजनाएँ ही बनाते रहते है, उसके अनुसार काम नहीं करते। उससे कोई विशेष लाभ नहीं है, विशेष उन्नति नहीं है।

दर्शनयोग महाविद्यालय
रोजड़वन, गुजरात

वैदिक प्रार्थना

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

यजु.40.17

The face of Truth is covered
by a golden veil
and that is why we do not see it.

O Lord of Light, do away with this veil
to enable us to see the TRUTH
in all its resplendence and purity.

स्वर्णमय ढक्कन पड़ा है
सत्य के इस पात्र–मुख पर,
दीखता जिससे नहीं वह।

सूर्य, तुम उसको हटा दो
दीख पाये हर किसी को
स्वच्छ, निर्मल धर्म सच्चा!

thearyasamaj.org

यह पितृ-पक्ष क्या है?

● हरिशचन्द्र वर्मा (वैदिक)

आश्विन कृष्ण! एकम् से अमावस्या 15 दिन का होता है और आश्विन शु.।। एकम् से पहले जो पितर पक्ष मानते हैं, वे अमावस्या को दाढ़ी मूंछ कटवाकर पण्डितों को कुछ दान देकर पिन्ट लोगों से आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

इस अन्धविश्वास प्रथा को इन ब्राह्मणों के पूर्वजों ने 3 हजार वर्ष पूर्व जब ऋषियों के नाम से 18 पुराणों की रचना कर दी तभी से इस पितृपक्ष का भी आविष्कार उन्होंने कर दिया। वेदों से अनभिज्ञ ब्राह्मणों ने मंत्रों का यथार्थ ज्ञान न होने के कारण 'पितृपक्ष चालू कर दिया और लोगों से गुजरे हुऐ पितरों का श्राद्ध और तर्पण करवाने लगे। इसके अलावा मध्यकालीन के कतिपय सायण, महीधर, उव्वह और मैक्समूलर आदि ने वेद विद्या के मंत्रों का वैदिक व्याकरण और ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के आधार पर सही भाष्य नहीं किया उन लोगों ने वेदों का पूरा अनर्थ कर डाला, यथा-मंत्र, तन्त्र, जादू-टोना, कृत्य, व्यभिचार, हिंसा, मांस भक्षण और अनेक प्रकार के अश्लील अर्थ करके। अरेजिन पितर अर्थात् पिता का देहान्त हो गया उनकी तो योनि ही बदल गई अर्थात् वे जन्म ले चुके। फिर उनके लिये ये कैसा श्राद्ध और कैसा पिण्डदान (जब माता-पिता को जीवित रहने नहीं पूछा गया तो मरने के बाद कौन देखता है) यहा तो वही बात हुई कि जब पिता मरने लगे तो पण्डित जी कहने लगे, महाजन! एक अच्छा गौ का दान तुरंत कराओ, नहीं तो तुम्हारे पिता की आत्मा वैतरणी नदी के पार नहीं कर सकेंगे, फिर उनकी मुक्ति भी नहीं मिल सकेगी। यजमान-गाँठ के पूरे मत के हीन, एक अच्छी दुधारू गाय का दान दे देता है। पण्डित जी प्रसन्न होकर बनावटी श्लोक से उस गाय का पूछ सन्तान से धरवाकर बोले अब तुम्हारे पिता जी वैतरणी नदी पार हो जायेंगें और उन्हें मुक्ति मिल जायेगी। उसके बाद पण्डित जी गाय और दान का समान सबलेकर अपने घर गये और गाय का दूध उनके सब परिवार पीने लगे। देखिये इसका पूरा विवरण "सत्यार्थ प्रकाश में"

वेद के इस प्रार्थना मंत्र को पौराणिक विचार वालों ने अपनी बनावटी पितर पक्ष को सिद्ध करने के लिये उल्टा अर्थ किया है। "ओम् यां मेघां देवगणाः पितरो पासते, तया मामद्य में ध्याग्ने मेधाविनं कुरु।' इसका अर्थ यह है कि- 'ओम् यां मेधा देवगणाः पितरोपासते, तयामामध में धयाग्ने मेधाविनं कुरुं।' इसका अर्थ यह है-'हे ईश्वर! जिस बुद्धि से देवगण अर्थात् माता-पिता, आचार्य आपकी प्रार्थना उपासना करते हैं उसी बुद्धि से युक्त हम सबको कीजिये।

पितर का अर्थ दो है- एक वह पितर अर्थात् पिता जो जीवित हैं और दूसरा जिस पिता का देहान्त हो गया, उसे भी पितरक कहा जाता है। वेद शास्त्र और गीता में भी मृत्यु के पश्चात आत्मा का पुनर्जन्म प्रारंभ हो जाता है। योगेश्वर श्री कृष्ण जी गीता अ. 2 में कहते है कि 'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।' अतः श्री कृष्ण ने जन्म-जन्मान्तर को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है- "बहूनि में व्यतीतानिजन्मानि तव चार्जुन। तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।। 4,5।। हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। परन्तु हे परंतप! उन सबको तू नहीं जानता है और मैं जानता हूँ।'

वेद भी पुनर्जन्म को स्वीकार किया है- 'मई चकार न सो अस्य वेदय ईददर्शहिरुमिभुतस्मात्। स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजानिर्ऋतिमा विवेश।। (ऋ. 1,16432).

जीवों के पूर्व जन्मों का आरंभ और बाद के जन्मों का अन्त नहीं है। जब वे शरीर त्यागते हैं, तब अन्तरिक्ष में स्थित होकर, गर्भ में प्रवेश करके और जन्म लेकर पृथिवी परचेष्टा युक्त होते हैं।

पितरपक्ष में पितर लोग, दि. 23 सितम्बर 2014 को एक 'टी.वी. चैनेल पर पण्डित जी बोल रहे थे कि पक्ष के अन्तिम दिन पितर लोग पीपर वृक्ष में वास करते हैं और जो सन्तान उनका श्राद्ध करता है तथा ब्राह्मणों को दान देता है उनको पिता पितामह आशीर्वाद देते हैं।

वाह रे पोप लीला आज भी इस विज्ञान के युग में अच्छे-अच्छे लोग एवं मंत्री भी इस अंधविश्वास में फँसे हुए हैं, जो बिल्कुल असत्य है, उसे सत्य मानकर श्राद्ध करते रहते है जिस माता-पिता के जीवित रहते उनकी श्रद्धा उनकी सेवा और भोजन आदि की सुख सुविधा नहीं की गई उस उनके मरने के बाद क्यों किया जा रहा है। जबकि उनका कहीं पुनर्जन्म हो गया होगा।

मनु महाराज ने लिखा है कि 'अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

इस पवित्र आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञान सम्बन्धित वेदों को, एक साधारण ऐतिहासिक पुस्तक बना डाला, जिसका लाभ अंग्रेजों ने भारत के इतिहास लिखने में उठाया। उन्हीं भाष्यों के आधार पर आर्यों को शिकारी, मांसाहारी यज्ञों में पशु बलि, तथा वेद मंत्रों को भेड़ बकरी चराने वाले गडेड़ियों का गाना बता दिया। यदि ऋषि दयानन्द आविर्भाव न हुआ होता तो वेदों का सत्यार्थ कोई न समझ पाता। चत्वारितस्यवर्धन्ते आयुर्विद्यायशो बलम्।। अर्थात् जो बालक अपने से बड़ों की सेवा करता है और उनको प्रतिदिन श्रद्धा से प्रणाम करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बल यह चारों चीजें हमेशा बढ़ती चली जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक बालक का कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने माता पिता और गुरु और बड़ों की आज्ञा माने, उनकी सेवा करे, उनके बताये हुए अच्छे मार्ग पर चले, उनको किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचावें तभी वे विद्वान, धर्मात्मा और यशस्वी बन सकते हैं। यही उनका श्राद्ध है और यही उनका तर्पण है। 'करे श्रद्धा से जो सेवा, सभी कुछ पितृ-अर्पण हैं।

प्रश्न- तो क्या बहुत से हिन्दू जो क्वार के महिने में अपने हुए माता-पिता का श्राद्ध करते हैं, वह क्या सच्चा श्राद्ध नहीं है?

उत्तर- नहीं; क्योंकि बुद्धि से विचार ने की बात है कि इस आजकल किये जाने वाले श्राद्ध में कुछ भी तत्व नहीं, न उसमें कोई सच्चाई है और न कोई लाभ। भला सोचो तो सही, कि जिन माता-पिता की मृत्यु हो चुकी है, उनके जीवात्मा ने कहीं दूसरी जगह जन्मधारण किया होगा, वे भला श्राद्ध में तुम्हारी खीर खाने के लिये आते हैं? जो ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन के लिये बुलाये जाते हैं, वे कहते हैं कि उनका खाया हुआ पितरों को पहुंच जाता है। बाहरी बुद्धि! क्या ब्राह्मणों के पेट लैटरबाक्स ठहरे जिनमें चिट्ठी डालो तो दूसरी जगह पहुंच जाती हैं। अगर ऐसा हो भी तो वहाँ से रसीद आनी चाहिये। वास्तव में यह सब ढंग पोपों ने अपना पेट भरने और अपनी गाँठ के पूरे लोगों से रुपया ऐंठने के लिए निकाले हैं। इसी प्रकार मनुष्य को मरते समय वैतरणी नदी का भय दिखलाकर यह पोप लोग गोदान कराते हैं, लेकिन बुद्धिमान् लोग अब इनके चक्कर में नहीं आते।' इन श्राद्ध कराने वाले ब्राह्मणों से पूछना चाहिये कि क्या हमारे गुजरे हुए माता पिता का पुनर्जन्म बिना श्राद्ध किये नहीं होता? क्या जब तक वे श्राद्ध का खीर आदि अपने संतानों के हाथों नहीं खा लेते तब तक क्या उनकी आत्मा भटकती रहती है? क्या यह नियम केवल हिन्दुओं के लिये बने हैं? यह मानव मात्र के लिये भी है? यदि मानव मात्र के लिये बने हैं तो जो मानव अपने मरे हुए माता-पिता का श्राद्ध नहीं करता तो उनके माता-पिता तो प्रेतात्मा होकर भटकते ही होंगे। अच्छा बेवकूफ समझकर आप लोगों ने हिन्दुओं को धर्मान्ध बना रक्खा है, और धर्मान्धता तो आप लोग गुप्तकाल के पूर्व से ही सबको बनाने लगे थे। क्योंकि महाभारत युद्ध के पश्चात् अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व जैन और बौद्ध धर्म के समय-प्रायः ब्राह्मणों की वेदादिशास्त्रों का अच्छा ज्ञान तो था नहीं, वह इसलिये कि उस युद्ध में जितने वे दूज थे मारे जा चुके थे, केवल उनके सन्तति जो, ब्राह्मण वर्ण के थे उन्हें ऋषियों के न होने से वेदादिशास्त्रों का ज्ञान कराने वाला कोई नहीं था। इसलिये उस समय अल्पज्ञ ब्राह्मणों ने ऋषियों के नाम से 18 पुराणों की रचना कर दी (वे लोग ऋषियों के नाम से पुराणों की रचना इसलिये किये ताकि सबको कोई इनको मान सके) उस समय भारत के लोग और राजा भी ब्राह्मणों का बहुत सम्मान किया करते थे, (उस समय कुछ ज्ञानी लोग भी थे) वह इसलिये कि वेदादि ग्रन्थों में ब्राह्मणों को श्रेष्ठ माना गया था और श्रेष्ठ भी इसलिये कि महाभारत काल के पूर्व के ब्राह्मण लेग वेद विद्या के पूर्व ज्ञाता थे, किन्तु इस मध्यकालीन के ब्राह्मण लोग वेदादिशास्त्रों के स्थान पर अपने रचे हुए (वेद विरूद्ध) पुराणों को ही सनातन धर्म पुस्तक बताकर सबके गुरु बनते गये, यहाँ तक कि मंत्रियों और राजाओं की भी कुल गुरू बन गये। उस समय इन लोगों के पूर्वजों को सभी देवता के तुल्य मानने लगे थे। ये दो श्लोक अपने यजमानों को सुनाते रहे। 1-'ब्रहमवाकंजनार्दनः अर्थात जो कुछ ब्राह्मणों के मुख से निकले उसे जानो साक्षात भगवान के मुख से निकला। और-2 दूसरा 'ब्रहमद्रोही विनश्यति।। अर्थात् जो ब्राह्मणों से द्वेष करता है उसका नाश हो जाता है। इसलिये उस समय वे जो कुछ धर्म के सम्बन्ध में कहते उसे ही सब मानने और पालन करने लगे थे। यह 'पितरपक्ष' का भी आविष्कार उस समय उन्होंने किया था। वेदादि शास्त्रों में इनकी कहीं चर्चा तक भी नहीं है।

मु.पी. मुरारई,
जिला-वीरभूम (पं. बंगाल) 731219
मो. 8158078011

वाह रे पोप लीला आज भी इस विज्ञान के युग में अच्छे-अच्छे लोग एवं मंत्री भी इस अंधविश्वास में फँसे हुए हैं, जो बिल्कुल असत्य है, उसे सत्य मानकर श्राद्ध करते रहते है जिस माता-पिता के जीवित रहते उनकी श्रद्धा उनकी सेवा और भोजन आदि की सुख सुविधा नहीं की गई उस उनके मरने के बाद क्यों किया जा रहा है। जबकि उनका कहीं पुनर्जन्म हो गया होगा।

thearyasamaj.org

कुछ उपनिषदों से (छान्दोग्योपनिषद्)

● डॉ. सुशील वर्मा

छान्दोग्योनिषद् सामवेद के ताण्ड्य महाब्राह्मण के अन्तर्गत आता है। इसी के अन्तिम 31–38 अध्यायों को छान्दोयोपनिषद् कहते है। इस ग्रन्थ के आठ अध्यायों में से अन्तिम तीन अध्याय अध्यात्म ज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम अध्याय उद्गीथ दृष्टि से ओंकार की उपासना, प्राण की उपासना, उदगीथोपासना का वर्णन करता है। वहीं दूसरा अध्याय सामोपासना, धर्म के तीन स्कन्ध, त्रयी विद्या, ओंकार की उत्पत्ति, सामगान आदि की चर्चा करता है। मधुविद्या का वर्णन तीसरे अध्याय में हैं। साथ ही वहाँ गायत्री का वर्णन, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' आदि वर्णित हैं। चतुर्थ अध्याय सत्यकाम जाबाल, उपकोशल को सत्यकाम जाबाल से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का विस्तृत विवेचन है। पंचम अध्याय में केकयराज अश्वपति की सिंह गर्जना "न मे स्तेनो जनपदे– – स्वैरिणी कुतः" की गई है। षण्ठ अध्याय में "तत्त्वमसि श्वेतकतो" आरुणि की अध्यात्म शिक्षा की पीठ स्थानीय मन्त्र हैं। इस महाकाव्य की भाष्यकारों ने अनेको प्रकार से व्याख्या की है। सप्तम अध्याय में सनत्कुमार द्वारा नारद को "यो वै तदमृतम् अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्" का उपदेश। इसी अध्याय में आहार शुद्धौ, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति, स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः" का विवेचन। अन्तिम अष्टम अध्याय में इन्द्र और विरोचन की कथा तथा आत्मप्राप्ति के व्यावहारिक उपायों का सुन्दर चित्रण किया गया है।

ओंकार की उपासना

उद्गीथ अर्थात् ओंकार की महिमा, उपासना इस उपनिषद् में बहुत ही विस्तृत रूप में प्राप्य है। प्रथम प्रपाठक के 13 खण्डों में ओंकार की महिमा का गुणगान किया है।

उपनिषत्कार इस ग्रन्थ का प्रारम्भ ही 'ओ३म्' से करता है।
"ओमित्येतदक्षरमुदगीथमुपासीत, ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्"

पाँचों महाभूतों का रस पृथिवी है, पृथिवी का रस जल है, जलों का रस ओषधियाँ, ओषधियों का रस पुरुष, पुरुष का रस वाणी, वाणी का सार ऋक अर्थात् उस परमपिता की स्तुति, ऋक का रस साम, अर्थात उस परमेश्वर के नाम का गायन, नाम का रस उद्गीथ अर्थात उत् – उच्चं स्वर से गीथ = गायन। उस ओंकार का उच्च स्वर से गायन ही उद्गीथ है।

यही उद्गीथ रसों का रस है, सर्वोच्च स्थायी रस। पृथिवी जल, ओषधि, पुण्य, वाणी, ऋक, साम और उद्गीथ के रस क्रम का आठवाँ रस।

"स एष रसानाँ, रसतमः परम परार्ध्योष्टमो यदुद्गीथ"

वाणी ही ऋक है, प्राण साम, 'ओ३म्' अक्षर ही उद्गीथ है। ऋक् और साम से 'ओ३म्' अक्षर ही सृष्टि होती है। प्रभु का नाम जब वाणी द्वारा प्राण शक्ति से गाया जाता है तब ही ओंकार प्रकट होता है।

'ओ३म्' अक्षर ही अनुज्ञा में प्रयोग होता है। किसी बात की अनुज्ञा अथवा स्वीकृति 'ओ३म्' अक्षर द्वारा ही दी जाती है। ओंकार से ही त्रयी विद्या का प्रारम्भ होता है। सोम याग में अध्वर्यु, होता, उद्गाता ओंकार से ही कार्य प्रारम्भ करते हैं।

"यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे"। पिण्ड में प्राण तथा ब्राह्माण्ड में सूर्य ओंकार का प्रतिनिधित्व करता है। इस उपनिषद् में कथा द्वारा यह तथ्य समझाया गया है। कहते हैं कि जब देव और असुर (ये दोनों प्रजापति की सन्तानें हैं) आपस में लड़ने लगे तब देवताओं ने उद्गीथ को इसलिए ग्रहण किया गया कि हम असुरों का हरा देंगे।

सबसे पहले उन्होंने नासिका में रहने वाले अर्थात् 'ध्राण शक्ति' को शरीर में उद्गीथ का प्रतीक मानकर उस की उपासना की ताकि वे इस उपासना द्वारा असुरों को मात दे देंगे।

परन्तु असुरों ने पाप द्वारा घ्राण को बींध दिया। यही कारण है कि मनुष्य घ्राण द्वारा दोनों को सूंघता है– सुगन्ध भी दुर्गन्ध भी। क्योंकि घ्राण पाप से बींधा हुआ है। फिर दोनों ने वाणी को उद्गीथ मान कर उसकी उपासना की परन्तु असुरों ने उसे भी पाप द्वारा बींध दिया, इसी कारण मनुष्य दोनों बातें वाणी द्वारा कहता है– सच भी, झूठ भी।

तत्पश्चात देवों ने शरीर में चक्षु को उद्गीथ का प्रतीक मान कर उपासना की परन्तु असुरों ने उसे भी पाप द्वारा बींध दिया। जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य आँखों से दोनों पदार्थ देखता है दर्शनीय और अदर्शनीय। उसके बाद श्रोत्र को उद्गीथ का प्रतीक चुनकर उन की उपासना की गई। परन्तु पाप द्वारा उसे भी असुरों ने बींध दिया इसी कारण मनुष्य श्रोत्र से दोनों बातें सुनता है श्रवण योग्य और अश्रवण योग।

इसी प्रकार देवों ने शरीर में मन को उद्गीथ मान कर उपासना की, परन्तु असुरों ने पाप द्वारा उसे भी बींध दिया। इसलिए मन से दोनों प्रकार के संकल्प करता है– विचारणीय और अविचारणीय। तब देवों ने मुख में रहने वाले प्राण को उद्गीथ का प्रतीक मानकर उपासना की। क्योंकि अन्य सभी इन्द्रियों में स्वार्थ की भावना होती है परन्तु मुख ही ऐसा है जिसमें स्वार्थ की भावना नहीं होती। मुख जो कुछ लेता है, सबमें बाँट देता है। अपने पास कुछ नहीं रखता। प्राण ही दिन रात आँख, नाक, कान सभी इन्द्रियों को सजीव बनाए हुए है। जब असुर मुख में रहने वाले प्राण को पाप से बींधने के लिए उसके पास पहुँचे तो ऐसे नष्ट भ्रष्ट हो गए जैसे कठोर पत्थर से टकराकर मिट्टी का ढेला नष्ट हो जाता है।

मुख द्वारा प्राण शक्ति से उच्च घोष से ओंकार नाद जब गुँजाते हैं उसे उद्गीथ कहा जाता है। अन्य इन्द्रियों से उद्गीथ उपासना से शुभाशुभ वासना बनी रहती है परन्तु मुख में प्राण के योग द्वारा उदगीथ उपासना करने से अर्थात् उच्च स्वर से गुँजाहट करने से पाप का स्पर्श नहीं होता क्योंकि मुख और प्राण दोनों में स्वार्थ का सम्पर्क नहीं है।

मुख स्थित प्राण से न मनुष्य सुगन्ध जानता है न दुर्गन्ध को। यह प्राण पाप रहित है, स्वार्थ शून्य है। जो कुछ खाता पीता है उससे अन्य इन्द्रियों की पालना करता है। अन्त समय मृत्यु क्षण इस प्राण के न मिलने पर मनुष्य चल देता है और मुख फाड़ देता है मानो कर रहा हो कि लौट आओ।

कथा का सार यही है कि स्वार्थ शून्य हो कर कार्य किया जाए वही फलदायक है। स्वार्थ के बस तो पाप पुण्य का विवेचन करना भी मुश्किल है। मुख की तरह जहाँ प्राण निवास करता है वहीं प्राण सारी इन्द्रियों को संजीव बनाता है और मुख भी अपने पास कुछ नहीं रखता, अपितु सभी को बाँट देता है यही है "इदम न मम्" की भावना आन्तरिक यज्ञ का ध्येय।

इसी मुख स्थित प्राण को उद्गीथ को प्रतीक मानकर बृहस्पति ने ओंकार की उपासना की। इसलिए प्राण को बृहस्पति माना जाता है, वाणी बृहती है, महान है और प्राण उसका पति।

जिस प्रकार शरीर से प्राण उद्गीथ का प्रतीक है वही ब्राह्मण्ड में तप रहा सूर्य उद्गीथ का प्रतीक है। जिस प्रकार शरीर में निस्वार्थ चल रहे प्राण उसी प्रकार विश्व में स्वयं तप करके प्रकाश तथा जीवन फैलाने वाला सूर्य है। उदय होता हुआ सूर्य मानो उद्गीथ का रूप है वही उद्गाता की तरह गायन कर रहा होता है।

वही उदय होता सूर्य भौतिक अन्धकार और मानसिक भय को मार भगाता है।

उपनिषद् का उपदेश है कि ओंकार का केवल पाठ ही नहीं परन्तु मर्म को भी समझना चाहिए। उपाख्यान में वर्णित है कि देव मृत्यु के भय से त्रयी विद्या में जा छिपे, उन्होंने वेद के छन्दों से अपने को ढाँप लिया। उन्होंने छन्दों से अपने को आच्छादित कर लिया इसलिए छन्दों को 'छन्दांसि छादनात्) अर्थात आच्छादित करने वाला कहा जाता है। मृत्यु ने देवों को ऋक्, साम, यजु को छिपा हुआ देख लिया क्योंकि वेदमंत्रों के पाठ के सहारे देव मृत्यु से बचना चाहते थे, परन्तु यह उनकी भूल थी। इसलिए ऋचाओं के मर्म को पाकर 'ओ३म्' का दीर्घ स्वर से उच्चारण किया जाता है। ओ३म यही स्वर हे जो 'अक्षर' है अमृत है, अभय है। इसी 'ओ३म्' में लीन होकर देवजन 'अमृत' तथा 'अभय' हो गए। जो उपासक 'ओ३म्' की महिमा को जानता हुआ 'अक्षर' की स्तुति करता है, वह इस अमृत, अभय स्वर में– अक्षर ध्वनि में लीन हो जाता है। उसमें लीन होकर जैसे देव अमृत हो गए जैसे ही वह भी अमृत हो जाता है।

प्रथम पाठक के अन्त में भी कहा गया है कि मनुष्य क्या पशु जगत भी उद्गीथ की उपासना कर रहा है। इस को कुत्तों के "शौव–उद्गीथ" (श्वा अर्थात कुत्ता) के उदाहरण से समझाया गया है। जिस प्रकार उद्गाता लोग प्रभु की स्तुति गुणगान करते हैं उसी प्रकार सब कुत्ते 'हिंकार' करते हैं– मानों ओंकारोपासना कर रहे हो। हाउ–हाउ–ओ होहाई इत्यादि अक्षर सामगान के मन्त्र पाठ में गाये जाते हैं। उसी के अनुरूप वे एक ध्वनि में कहते हैं– 'ओ३म्' की कृपा से हम खाते हैं, 'ओ३म्' की कृपा से हम पीते हैं। देव, अरुण, प्रजापति सविता हमारे लिए अन्न यहाँ लाते हैं। अन्न के स्वामी हमें अन्न दीजिए।

हाउ मानो इस पृथिवी लोक की महिमा का गान है "हाउ मानो प्रभु की देव वायु की महिमा का गान, अथ चन्द्रमा का, इह आत्मा का, 'ई' अग्नि का स्मरण है।

अयं वा व लोको हाउ कारो, वायुर्हाइकारश्चन्द्रमा अथकार आत्मेहकारोऽग्निरीकारः।। छान्दो 1/13/1

'ऊ' आदित्य का 'ए' आह्वान का 'औहोई' विश्वदेव का हिं प्रजापति का, स्वर प्राण का विराट् अन्न एवं वाणी का मानो स्मरण है। और 'हुंकार' स्वर अनिर्वचनीय, सर्वसंचारी परब्रहम का स्मरण कराता है।

सारांश यही कि प्रणव अथवा उद्गीथ (ओंकार के लिए ऋग्वेदी 'प्रणव' शब्द का प्रयोग करते हैं और सामवेदी उद्गीथ शब्द का) उपासना निस्वार्थ भाव से की जाए। केवल मात्र ओंकार का उच्चारण ही नहीं अपितु उसके मर्म को समझ कर और प्रत्येक उच्चारण में उस प्रभु की महिमा, उसका उपकार सभी प्रकार की प्राप्यता का आर्शीवाद मानकर उस जगत्पति, सर्वव्यापक, सर्वसंचारी परब्रह्म का स्मरण करना आवश्यक है।

रोम रोम में तेरा विरह हो और बिन्दु में 'ओ३म्'–प्रणव अथवा उद्गीथ द्वारा पल पल उसका स्मरण।

अगले अंक में सत्यकाम जाबाल कथा।

गली मास्टर मूल चन्द वर्मा
फाजिलका–152123 (पंजाब)
दिनांक : 1.12.2014

thearyasamaj.org

ईसाई-मत में स्वर्ग की अनर्गल कल्पना

● महात्मा चैतन्यमुनि

स्वर्ग-नरक के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं। अधिकतम लोग स्वर्ग तथा नरक कोई स्थान-विशेष ही समझते हैं। उनकी कल्पना है कि इस धरती से ऊपर कहीं पर स्वर्ग-लोक और नीचे नरक-लोक है। जब कल्पना ही करनी है तो अज्ञानियों ने किसी स्थान विशेष में स्वर्ग व नरक मानकर अनेक प्रकार की अन्य अनर्थक, अनर्गल, अवैज्ञानिक, अशास्त्रीय तथा अविश्सनीय कल्पनाएँ कर डालीं। अलग-अलग मत-मजहबों ने अपने-अपने स्वर्ग तथा नरक की भी अलग-अलग मान्यताएँ स्थापित कर रखी है। बाईबल में स्वर्ग को इस पृथिवी के ऊपर कहीं आकाश में माना गया है। ईसाई खुदा यहोवा वहाँ रहता है उसके रहने का बड़ा मकान है। उसमें अनेक दरवाजे हैं और उनमें फाटक लगे हैं तथा प्रत्येक फाटक पर पहरेदार रक्षा के लिए नियुक्त है। खुदा एक बड़े सिंहासन पर बैठता है। इस खास इकलौता बेटा ईसा, यहुदियों ने जिसे फांसी दे दी थी- खुदा के दाहिनी ओर तख्त पर बैठता है। ईसाई खुदा ने उसे इस जमीन का सर्वाधिकार प्रदान कर रखा है कि जिसे चाहे वह मोक्ष दिलावे और जिसे चाहे वह दोजख में डाल देवे, जिसके चाहे पाप क्षमा कर दे। यहोवा के यहाँ स्वर्ग में करोड़ो स्वर्ग-दूत रहते हैं, बीस करोड़, घुड़सवार सेना तथा बारह से भी अधिक फौजी पलटनें खुदा की रक्षा को तथा खुदा की ओर से उसके दुश्मनों से लड़ने को स्वर्ग में रहती हैं। ईसाई खुदा उस स्वर्ग से इस धरती पर भी कभी-कभी तशरीफ़ लाता रहता था। कभी-कभी अपने पक्ष वालों के साथ युद्ध करने भी जाया करता था। ईसाई स्वर्ग में एक बार शैतान (सर्प) से व उसके साथियों से मीकाएल व उसके साथियों से युद्ध भी हुआ था। (बाईबल के अन्तिम अध्याय में 'प्रकाशित वाक्य' ईसाई-मत के स्वर्ग का ऐसा वर्णन मिलता है)

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' (समुल्लास तेरह) में इस प्रकार के अविश्नीय स्वर्ग के सम्बन्ध में बहुत ही सार्थक समालोचना की है। स्वर्ग के ऊपर होने के सम्बन्ध में वे कहते है- 'जो आकाश को स्वर्ग कहा, तो वह सर्वव्यापक है, इसलिए सर्वत्र स्वर्ग हुआ फिर ऊपर को स्वर्ग है, यह कहना व्यर्थ है। बाईबल मे (ई.मत्ती.प.5।आ03,18,19) कहा है कि स्वर्ग में दीनों का राज्य होगा आदि... इसकी समालोचना करते हुए वे लिखते हैं- ' जो स्वर्ग एक है, तो राजा भी एक होना चाहिए। इसलिए जितने दीन है, तो वे सब स्वर्ग को जावेंगे, तो स्वर्ग में राज्य का अधिकार किसको होगा? अर्थात् परस्पर लड़ाई-भिड़ाई करेंगे, और राज्यव्यवस्था खण्ड-खण्ड हो जायेगी और दीन के कहने से जो कंगले लोगे, तब तो ठीक नहीं। जो निरभिमानी लोगे, तो भी ठीक नहीं क्योंकि दीन और निरभिमान का एकार्थ नहीं, किन्तु जो मन में दीन होता है उसको संतोष कभी नहीं होता। इसलिए यह बात ठीक नहीं। "जब आकाश पृथिवी टल जाएँ, तब व्यवस्था भी टल जायेगी। ऐसी अनित्य व्यवस्था मनुष्यों की होती है, सर्वज्ञ ईश्वर की नहीं। और यह एक प्रलोभन व भय मात्र दिया है कि जो इन आज्ञाओं को न मानेगा वह स्वर्ग में सबसे छोटा गिना जायेगा। 'बाईबल (इं.म.प.7। आ.21,22,23) में लिखा है कि हर एक जो मुझसे 'हे प्रभु हे प्रभु' कहता है, स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा।... उस दिन में बहुतेरे मुझसे कहेंगे। तब मैं उनसे खोलके कहूँगा- 'मैंने तुमको कभी नहीं जाना है। कुकर्म करने हारे मुझसे दूर होवो।' इस पर महर्षि लिखते हैं- 'अब विचारिए, बड़े-बड़े पादरी विशप साहेब, और कृश्चीन लोग, जो यह ईसा का वचन सत्य है ऐसा समझें, तो ईसा को प्रभु अर्थात् ईश्वर कभी न कहें। यदि इस बात को न मानेंगे, तो पाप से कभी नहीं बच सकेंगे। ... देखिये, ईसा जंगली मनुष्यों को विश्वास कराने के लिए स्वर्ग में न्यायाधीश बनना चाहता था। यह केवल भोले मनुष्यों को प्रलोभन देने की बात है।

बाईबल में (इ.म.प.19।आ.23,24) धनवानों को स्वर्ग न मिलने की बात नहीं है। महर्षि लिखते हैं- 'इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दरिद्र था। धनवान् लोग उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे। इसलिए यह लिखा होगा। परन्तु यह बात सच नहीं। क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रों में अच्छे-बुरे होते हैं। जो काई अच्छा काम करे वह अच्छा, और जो बुरा करे वह बुरा फल पाता है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वर का राज्य किसी एक देश में मानता था, सर्वत्र नहीं। जब ऐसा है, तो वह ईश्वर ही नहीं। जो ईश्वर है, उसका राज्य सर्वत्र है। पुनः उसमें प्रवेश करेगा वा न करेगा, यह कहना केवल अविद्या की बात है। और इससे यह भी आया कि जितने ईसाई धनाढ्य है, क्या वे सब नरक ही में जाऐंगे? और दरिद्र सब स्वर्ग में जाऐंगे? भला तनिक-सा विचार तो ईसामसीह करते कि जितनी सामग्री धनाढ्यों के पास होती है, उतनी दरिद्रों के पास नहीं। यदि धनाढ्य लोग विवेक से धर्ममार्ग में व्यय करें, तो दरिद्र नीच गति में पड़े रहें, और धनाढ्य उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं।' जो ईसा की शरण में आयेगा, उसे ही स्वर्ग मिलेगा इस पर महर्षि कहते हैं-' भला यह कितनी पक्षपात की बात है, जो अपने शिष्य है उसको स्वर्ग, और जो दूसरे हैं उनको अनन्त आग में गिराना?...' स्वर्ग में ईश्वर के मन्दिर और वेदी को नापने की बात पर महर्षि लिखते हैं- 'यहाँ तो क्या परन्तु ईसाइयों के तो स्वर्ग में भी मन्दिर बनाए और नापे जाते हैं। अच्छा है, उनका जैसा स्वर्ग है वैसी ही बातें हैं... स्वर्ग में जो मन्दिर है, सो हर समय बन्द रहता होगा? क्या परमेश्वर का भी कोई मन्दिर हो सकता है? जो वेदोक्त परमात्मा सर्वव्यापक है, उसका कोई भी मन्दिर नहीं हो सकता। हाँ, ईसाइयों का जो परमेश्वर आकारवाला है, उसका चाहे स्वर्ग में हो चाहे भूमि में। और जैसी लीला टन्-टन् पूं-पूं की यहाँ होती है, वैसी ही ईसाइयों के स्वर्ग में भी। और नियम का सन्दूक भी कभी-कभी ईसाई लोग देखते होंगे। उससे न जाने क्या प्रयोजन सिद्ध करते होंगे? सच तो यह है कि ये सब बातें मनुष्यों को लुभाने की है।... आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया। और देखो, एक बड़ा लाल अजगर है, जिसके सात सिर और दस सींग है। और उसके सिरों पर सात राजमुकुट है। और उसकी पूंछ ने आकाश के तारों की एक-तिहाई को खींचके उन्हें पृथिवी पर डाला। 'बाइबल में स्वर्ग में युद्ध होने तथा विवाह होने की बात लिखी है। इस पर महर्षि का कहना है- 'जो काई ईसाईयों के स्वर्ग में जाता होगा, वह भी लड़ाई में दुःख पाता होगा। ऐसे स्वर्ग की यहीं से आश छोड़ हाथ जोड़ बैठे रहो। जहाँ शान्ति भंग और उपद्रव मचा रहे, वह ईसाइयों के योग्य है।... अब सुनिए, ईयाइयों के स्वर्ग में विवाह भी होते हैं क्योंकि ईसा का विवाह ईश्वर ने वहीं किया। पूछना चाहिए कि उसके श्वसुर सासू शालादि कौन थे? और लड़के वाले कितने हुए? और वीर्य के नाश होने से बल बुद्धि पराक्रम आयु आदि के भी न्यून होने से अब तक ईसा ने वहाँ शरीर त्याग किया होगा? क्योंकि संयोगजन्य पदार्थ का वियोग अवश्य होता है।... तब ईसाइयों ने उसके विश्वास में धोखा खाया, और न जाने कब तक धोखे में रहेंगे।' 'ईसाइयों का मानना है कि जो भी ईसा की शरण में आयेगा उसे स्वर्ग मिलेगा... मगर बाईबल में ही लिखा है कि घृणित कर्म करने वाले तथा झूठ पर चलने वाले व्यक्ति का प्रवेश नहीं होगा। इस पर महर्षि का कहना है- 'जो ऐसी बात है, तो ईसाई लोग क्यों कहते हैं कि पापी लोग भी स्वर्ग में ईसाई होने से जा सकते हैं? यह ठीक बात नहीं।... और ईसा भी स्वर्ग में न गया होगा क्योंकि जब अकेला पापी स्वर्ग को प्राप्त नहीं हो सकता, तो जो अनेक पापियों के पाप के भार से युक्त है, वह क्योंकर स्वर्गवासी हो सकता है?'

यदि हम वास्तविक स्वर्ग की चर्चा करें तो व्याकरण शास्त्रानुसार 'स्वर्ग' शब्द 'स्वर्' उपपद में 'गम्लृ-गतौ' धातु से '**ड प्रकरणेऽन्येष्वपि दृश्यते।** अ.3-248 वार्तिक सूत्र से 'ड' प्रत्यय के योग से बनता है। गति के ज्ञान-गमन-प्राप्ति तीन अर्थ होते हैं। 'स्व' सुख का अनुभव होना, सुख में प्रविष्ट होना, सुख की प्राप्ति होना ही स्वर्ग अर्थात् सुख है। इसी प्रकार 'स्वर्गलोक' का अर्थ है। 'लोकृ दर्शने' धातु से लोक शब्द बनता है। जिसका अर्थ 'स्थान' है। जहाँ स्वर्ग प्राप्त होता है- सुख प्राप्त होता है वह स्वर्गलोक है। स्थान से यहाँ किसी विशेष स्थान से नहीं है बल्कि जिस अवस्था में हमें सुख प्राप्त हो वही स्वर्ग है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के 'स्वमन्तव्यामन्तव्य-प्रकाश' में लिखते हैं- 'स्वर्ग' -नाम सुख-विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है। 'नरक'- जो दुःख-विशेष भोग और सामग्री को प्राप्त होना है। 'सत्यार्थप्रकाश के नौवें समुल्लास में वे मुक्ति के प्रसंग में स्वर्ग-नरक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं- 'मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उसकी सब सन्निहित पदार्थों का भान अर्थात् यथावत होता है। यही सुखविशेष 'स्वर्ग' और विषयतृष्णा में फंसकर दुःखविशेष भोग करना 'नरक' कहाता है। 'स्वः' सुख का नाम है,' **स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः, 'अतो विपरीती दुःखभोगों (यस्मिन् स) नरक इति'** जो सांसारिक सुख है वह 'सामान्य सुख है वह 'सामान्य स्वर्ग', और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है, वही 'विशेष स्वर्ग कहाता है। 'यहाँ पर महर्षि जी ने स्वर्ग को दो भागों में बाँटकर बहुत ही सुन्दर एवं सार्थक विचार प्रस्तुत करके संसार को उपकृत किया है।

लोक शब्द का अर्थ है 'जो देखा जाए, जो जाना जाए'। इसके भाव हम इस प्रकार से समझ सकते हैं- स्थान, अवस्था या काल, सुख-विशेष की अवस्था, प्रकाश की अवस्था आदि। लोक शब्द का व्यवहार बहुत से प्रसंगों में किया जाता है, जैसे-कन्या पितृलोक को छोड़कर पतिलोक को जा रही है आदि। जैसे स्वर्ग-लोक कोई स्थान विशेष नहीं है। स्वर्ग का अर्थ सुख है इसलिए नरक का

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

thearyasamaj.org

प्रार्थना-पुरुषार्थ

● राज कुकरेजा

एक आध्यात्मिक गुरु अपने शिष्यों को प्रार्थना के विषय में समझा रहे थे कि व्यक्ति की मनः स्थिति व आध्यात्मिक अवस्था के अनुसार प्रार्थना को भिन्न-भिन्न रूपों में परिभाषित किया जा सकता है। किसी के लिए प्रार्थना स्वार्थपूर्ति का अमोघ साधन है, किसी के लिए प्रार्थना रोग की अचूक औषधि। किसी के लिए प्रार्थना में प्रत्येक समस्या का समाधान निहित है तो किसी के लिए प्रार्थना प्रत्येक भँवर का निश्चित तरण है. कई भक्तों के लिए प्रार्थना भाव की सम्पादिका है, तो कई साधकों के लिए ईश्वर के साथ संभाषण की कला. प्रार्थना शब्द में 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'अर्थ' धातु से प्रार्थना शब्द सिद्ध होता है, ऐसा वैयाकरणों का मत है 'प्र' का अर्थ है'-प्रकर्षेण अर्थात तेज़ी से, उत्कंठा से, तीव्रता से और अर्थना का अर्थ है चाहना। कई विद्वानों का मानना है कि प्रार्थना शब्द की उत्पत्ति 'प्रार्थ' 'धातु' से हुई है जिस का अर्थ होता है अपने से विशिष्ट से दीनता पूर्वक कुछ माँगना अर्थात याचना करना। विचार पूर्वक देखा जाए तो चाहना और याचना दोनों से ही प्रार्थना का यथार्थ प्रयोजन है। याचना में इच्छा शक्ति अथवा संकल्प बल का सदुपयोग नहीं हो पाता। याचक को केवल अपनी याचना अथवा मांग प्रस्तुत करने के अतिरिक्त औरकुछ करना नहीं होता। परन्तु चाहने में जहाँ प्रभु से सहायता की इच्छा की जाती है, वहाँ स्वयं भी पूर्ण पुरुषार्थ करना पड़ता है याचना में जहाँ मन में हीन भाव उत्पन्न होते हैं वहाँ चाहने में आत्म-गौरव, आत्म-तोष तथा आत्म विश्वास जैसी भावनाएँ जागृत होने लगती हैं इस लिए प्रार्थना का अर्थ कई लोग केवल चाहना ही करते हैं तो दूसरी ओर दूसरे पक्ष वाले प्रार्थना को केवल याचना ही स्वीकार करते हैं। वास्तव में देखा जाए तो प्रार्थना ही याचना है, प्रार्थना ही चाहना भी है। कार्य की सिद्धि में जो अभिमान आदि आ जाते हैं, प्रार्थना से उसका नाश हो जाता है क्योंकि कार्य की पूर्णता तो परमेश्वर के सहाय से ही हुई है, इस परिज्ञान से आत्मा में नम्रता और निरभिमानता आ जाती है।

मन में इस जिज्ञासा का उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि यह विशिष्ट कौन हैं, जिनसे प्रार्थना की जा सकती है। इस जिज्ञासा का समाधान ऋषि दयानन्द सरस्वती जी आर्योद्देश्यरत्नमाला में स्पष्ट करते हैं। वे लिखते हैं कि 'प्रार्थना' अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरांत उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य का सहाय लेने को प्रार्थना कहते है। अर्थात श्रेष्ठ कर्मों की सिद्धि के लिए सर्व प्रथम अपना पूर्ण पुरुषार्थ कर लें, इसके बाद भी यदि न्यूनता है तो उसकी पूर्णता हेतु परमेश्वर से विज्ञान आदि के लिए याचना करने का नाम प्रार्थना है, अथवा जो उसे पूर्ण कर सके ऐसे मनुष्य की सहायता प्राप्त करने के लिए याचना करने का नाम प्रार्थना है. अतः परमेश्वर और अपने से अधिक सामर्थ्य रखने वाले विशिष्ट हैं। लौकिक जगत् में लौकिक सिद्धि के लिए तो अपने से अधिक सामर्थ्य वाले से प्रार्थना की जा सकती है परन्तु आध्यात्मिक जगत् में तो केवल प्रभु के चरणों में की गई याचना ही वास्तव में प्रार्थना कही जाती है। कर्म करने वाले की ही प्रार्थना फलीभूत होती है ईश्वर उन की सहायता करते हैं, जो अपनी मदद स्वयं करते हैं। God helps those who help themselves पुरुषार्थी की ही ईश्वर सहायता करता है। इसको इन रोचक एवं शिक्षा प्रेरक प्रसंगों से अच्छी प्रकार समझ में आ जाती है। एक व्यक्ति प्रति दिन सुबह पूजा स्थल जाता और अपने इष्ट देव की आराधना करता और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता कि हे ईश्वर! तुम ही मेरा सहारा हो। मैं गरीबी भरे जीवन से तंग आ चुका हूँ इसलिए मेरी लॉटरी लगवा दें, पर उसकी लाटरी नहीं निकली। अब उसने अपनी प्रार्थना के शब्द बदले-'हे ईश्वर अब मैं एक नेक इन्सान बन गया हूँ, सब से अच्छा व्यवहार करता हूँ, कृपया मेरी लॉटरी निकलवा दीजिए। लेकिन इस बार भी वह लॉटरी टिकट नहीं जीत पाया तो उसने अपनी प्रार्थना के शब्द बदले कि हे ईश्वर! मुझ पर दया करो। मेरी प्रार्थना का फल दो। मुझ गरीब को यूँ मत छोड़ो अब मैं एक नेक इंसान भी बन गया हूँ और सबके साथ अच्छा व्यवहार भी करता हूँ, फिर भी आप मेरी सहायता लॉटरी लगवाने में क्यों नहीं कर रहे हैं। तभी ईश्वर की वाणी गूँजी-''पुत्र, तुम मुझे चैन लेने दो। प्रार्थना ही प्रार्थना किये जा रहे हो, कम से कम एक लाटरी का टिकट तो लेने का श्रम करो। याद रखो कि क्षमता अनुसार कर्म करने वाले की ही प्रार्थना स्वीकार की जाती है''। ऐसा ही एक रोचक प्रसंग एक भक्त का है जो ध्यान लगाए जा रहा था तभी एक गड्ढे में गिर पड़ा। भक्त ने गड्ढे के अंदर ही ध्यान लगाना शुरु कर दिया। ध्यान की मुद्रा में बैठे भक्त की कब आँख लग गई, इस का उसे पता ही नहीं चला। आँख खोली तो समय देखा दोपहर ढलने को थी। ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि आप तो भक्त वत्सल कहलाते हो, अपने भक्तों के उद्धार करने वाले हो। मुझ भक्त से ऐसी क्या भूल हो गई कि कब से पुकार रहा हूँ कि तुम्हारा भक्त गड्ढे मे गिरा पड़ा है, इसे आ कर निकालो। इस प्रकार प्रार्थना करता जाता और रोता भी जाता, साथ-साथ ईश्वर से शिकायत भी करता जाता कि तुम सचमुच में बड़े ही निर्मोही हो, अपने भक्त पर तुम्हे थोड़ी भी दया नहीं आ रही है। गिले-शिकवे कर ही रहा था कि उसे ईश्वर ध्वनि सुनाई दी कि ''मेरे प्यारे भक्त मैंने तुम्हें गड्ढे से निकालने के लिए कितने ही लोगों को भेजा पर तुमने तो उन की सहायता तक नहीं ली और उल्टा मुझे ही दोष दे रहे हो कि मैंने ही तुम्हे गढ्ढे से नहीं निकाला। मैं भी इच्छा शक्ति और श्रम शक्ति देख कर ही मदद करता हूँ। अब भक्त ने अपनी भूल सुधारी और ज़ोर से मदद के लिए आवाज लगाई। पास गुजर रहे एक व्यक्ति ने उसकी आवाज को सुन कर उसे गड्ढे से बाहर निकलने में सहायता की। ऐसी घटनाएँ सुनने में हास्यास्पद लगती हैं, अवैदिक लगती हैं, पर एक गहरा संदेश देती हैं सच ही तो कहा है कि राह पर चलने वाले को ही राह दिखाई जाती है। नेपोलियन ने बहुत सुन्दर कहा था- 'गीले बारूद में तो ईश्वर भी आग नहीं लगा सकता अर्थात् अपने पुरुषार्थ द्वारा बारूद को सूखा रखो ठीक इसी तरह सावधानी, लगन, परिश्रम से और क्षमता अनुसार कर्म करें और साथ ही प्रार्थना भी। ऋषि दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखते हैं कि पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय जैसे दूसरा करता है, वैसे धर्म से पुरुषार्थी का सहाय परमेश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले को भृत्य रखते हैं, अन्य को नहीं। देखने की इच्छा रखने वाले और नेत्रवाले को ही दिखलाते हैं। कई बार ऐसा भी सुनने में आता है कि यदि फल पुरुषार्थ से ही मिलता है तो व्यर्थ में प्रार्थना क्यों की जाए क्योंकि पूर्ण पुरुषार्थ करने के बाद ही प्रार्थना फलीभूत होती है तो यह फल पुरुषार्थ का ही हुआ न कि प्रार्थना का। उनका ऐसा मानना उचित नहीं है। निश्चय से फल तो पुरुषार्थ का ही है प्रार्थना का फल भी इसके साथ ही जुड़ा हुआ है। प्रार्थना से ईश्वर की ओर से निरभिमानता, उत्साह और सहायता भी मिलती है। व्यक्ति का आत्मिक बल और मानसिक बल इतना बढ़ जाता है कि पहाड़ जैसे दुःख को भी राई के समान समझ कर हसंते-हंसते सहन कर लेता है। दूसरी और प्रार्थना न करने वाला राई के समान दुःख को पहाड जैसा दुःख बना लेता है। दो समान स्तर के विद्यार्थी इन में से एक प्रार्थना में विश्वास करने वाला और दूसरा केवल पुरुषार्थ में दृढ़ विश्वास रखने वाला पूर्ण पुरुषार्थ के साथ अपनी परीक्षा देते हैं, लेकिन परिणाम संतोष जनक ही नहीं अपितु आशा के विपरीत आते हैं। दूसरा विद्यार्थी जो प्रार्थना में विश्वास नहीं रखता इस परिणाम को सहजता से नहीं ले पाता हताश पर निराश हो जाता है। अत्यन्त विचलित हो जाता है। ऐसी अवस्था में मानसिक सन्तुलन भी खो देता है। उसे पूरा जीवन ही अंधकारमय लगने लता है। कई बार आत्महत्या भी कर लेता हे। आत्महत्या के कितने ही समाचार पढ़ने को मिलते रहते हैं। दूसरी ओर ईश्वर से प्रार्थना करने वाला इस असफलता को एक चुनौती के रुप में स्वीकार करता है। आत्म विश्लेषण करता है, भूल व अपनी की गई त्रुटियों को पकड़ने की कोशिश करता है और ईश्वर से प्रार्थना भी करता है कि ईश्वर मुझे बल दो कि इस बार मेरे पुरुषार्थ में किसी भी प्रकार की न्यूनता न रहने पाए। प्रार्थना की शक्ति को कई बड़े-बड़े सुप्रसिद्ध चिकित्सक भी स्वीकारने लगे हैं। उनका मानना है कि जो रोगी प्रार्थना में विश्वास करते हैं, उनमे असाध्य रोग से भी लड़ने की इच्छा शक्ति होती है। नोबल पुरस्कार विजेता विश्व विश्यात वैज्ञानिक एवं सर्जन डॉ. अलेक्सि्स केरल का कथन इस तथ्य को और मजबूत करता है। उनका कहना था-''मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है कि प्रार्थना करने वाले रोगी कैंसर और टी.बी, जैसे रोगों से रोगी मुक्त हो गये'' शायद इसीलिये अब प्रत्येक चिकित्सालयों में मन्दिर या पूजा स्थल होता है। साथ ही दीवारों पर लिखा होता है- 'हम केवल इलाज करते हैं, स्वस्थ ईश्वर करता है। (we treat,God cures)

ऋषि दयानन्द जी लिखते हैं कि व्यक्ति जैसी प्रार्थना करता है, उसको वैसा ही पुरुषार्थ भी करना चाहिए अर्थात जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिए परमेश्वर की प्रार्थना करे, उसके लिए जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना पुरुषार्थ भी अवश्य ही किया करे। अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है। जब लोग कई बार उन लोगों की प्रार्थना को निष्फल होती देखते हैं, जो कर्म शील होते हैं, तो उन की पुरुषार्थ के प्रति श्रद्धा कम होने लगती है यह तो उन की अज्ञानता है जो ऐसा सोचते हैं हम तो अल्पज्ञ हैं, नहीं जान सकते कि प्रार्थना निष्फल क्यों हुई है, परन्तु ईश्वर ही जानते हैं कि प्रार्थना में क्या भूल है और ईश्वर ही जानते हैं कि हमारी प्रार्थना को फलीभूत करना हमारे हित में है या अहित में , उसी के अनुसार निर्णय लेते हैं। ऋषि दयानन्द जी लिखते हैं कि ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिए और न ही परमेश्वर उसको स्वीकार करता

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

thearyasamaj.org

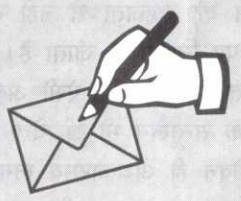

पत्र/कविता

योग भगाये रोग

उदर–रोग दे यों उड़ा ज्यों नग को बारूद।
उत्तम धोबी पेट का सर्दी का अमरूद्ध।।
चीकू कूची मारता योग भगाये रोग।
ब्रह्मचर्य की साधना जीते हर अभियोग।।

उठना ब्रह्ममुहूर्त में करना ऊषः पान।
अधि–व्याधि अभिशाप को हरे ब्रह्म वरदान।।

आँख बन्द कर देख लो भीतर का हर रंग।
मन की आँखें जब खुलें हो जाओगे दंग।।

भीतर अपना राज है बाहर जंगल राज।
सुन भीतर की बाँसुरी पहन ध्यान का ताज।।

अन्दर मन्दर सत्य का बाहर पग–पग झूठ।
भीतर घुसते सूरमा बाहर टूटी मूठ।।

कच्चे फल पकने लगे कृत्रिम विधि से रोज।
बच्चे पाप बन रहे बनें मृत्यु का भोज।।

सारा अमृत ओज का बचे कहाँ से ओज।
ब्रह्मचर्य बकवास है युग की सड़ियल खोज।।

छुप–छुप करते डॉक्टर सब पातंजल योग।
प्रकट विरोधी दीखते यह कैसा दुर्योग।।

हँसी एक वरदान है रोना है अभिशाप।
खुलकर हँसना पुण्य है घुटकर रोना पाप

फिसल जवानी जा रही कसकर पकड़ सँभाल।
पहले क्रम पर स्वास्थ्य है पीछे आटा–दाल।।

मस्तक पर दस्तक हुई खुला सहस दल–द्वार।
ब्रह्मरन्ध्र रिसने लगा है आनन्द अपार।।

बना सके है योग ही भोगी को नीरोग।
कम खाओ ज्यादा जिओ चखो सुखद संयोग।।

पूरे श्रद्धा भाव से कर अनुलोम–विलोम।
ठुकरा दो बीमारियाँ पिओ स्वास्थ्य का सोम।।

डा. सारस्वत मोहन, मनीषी

आर्ष पद्धति के साथ-साथ और भी कुछ करना होगा

मैं आपके लोकप्रिय हिन्दी साप्ताहिक 'आर्य जगत्' का नियमित पाठक हूं और समय–समय पर मेरे लेख भी आर्य जगत में प्रकाशित होते रहते हैं। इसमें प्रकाशित रचनायें शोधपूर्ण, विचारोत्तेजक एवं स्तरीय होती हैं। मैं आपके माध्यम से अपने सभी सुधी पाठकों, जो कि वैदिक धर्म का प्रचार–प्रसार विश्व के कोने–कोने तक पहुंचाना चाहते हैं की सेवा में कुछ सुझाव एवं उपाय प्रस्तुत करना चाहता हूं ताकि हम उक्त प्रचार–प्रसार सफलतापूर्वक कर सकें।

1. अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानंद ने हमारी प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली का न केवल पुनरुद्धार किया बल्कि शिक्षा में उस क्रांतिकारी प्रयोग के बहुत अच्छे परिणाम भी हर क्षेत्र में प्रस्तुत किये। एक समय था जब क्या शिक्षा, क्या लेखन, क्या पत्रकारिता क्या राजनीति, क्या देश–विदेश में धर्म प्रचार सभी ओर मुख्यतः गुरुकुलों के स्नातकों की धूम थी। उनकी तूती बोलती थी। आज भी यह पुनः हो सकता है। हम अपने गुरुकुलों में नई तकनीक अपनायें और वहां आर्य पद्धति के साथ–साथ अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, चीनी, डच आदि भाषाओं के निष्णात विद्वान तैयार करें जो देश–विदेश में पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, भवानीदयाल संन्यासी, सत्यदेव परिव्राजक, श्यामजी कृष्ण वर्मा, वर्तमान में डॉ. सतीश प्रकाश की तरह प्रचार की कमान सम्हाल सकें और स्वामी विवेकानंद की भांति वैदिक/हिंदू धर्म की दुंदुभि दिग्दिगन्त में बजा सकें। मात्र हिंदी, संस्कृत अथवा अपनी अन्य प्रांतीय भाषाओं के विद्वानों के सहारे हम विदेशों में सफल और प्रभावी प्रचार नहीं कर सकते। मैं अपने एक साल के नैरोबी (केन्या) एवं बाद में एक साल मारखम (कनाडा) प्रवास के आधार पर एवं कुछ अन्य देशों की संक्षिप्त सी यात्रा में प्राप्त अनुभव के आधार पर दावे से कह सकता हूं कि यदि हमें विधर्मियों को मुंह तोड़ उत्तर देकर वैदिक धर्म की वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत मान्यताओं को जन–जन तक पहुंचाना है तो विदेशी भाषाओं के वैदिक धर्म के प्रति पूर्णतः समर्पित निष्ठावान् एवं धुरंधर विद्वान पैदा करने ही होंगे।

2. त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज ने डी.ए.वी. के माध्यम से प्रयास किया था कि भारतीय और पाश्चात्य पद्धति का समन्वय करके हम ऐसा युवा वर्ग तैयार करें जो अपनी प्राचीन धार्मिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक विरासता से भी जुड़े रहें और पाश्चात्य पद्धति से भी अपरिचित न रहें और अपने प्राचीन ऋषि मुनियों, साधु, महात्माओं का संदेश उनके आदर्श, परम्परायें, उच्च जीवन मूल्य आदि देश–विदेश में प्रचारित प्रसारित करते रहें। मेरा नम्र निवेदन है कि वे वक्त का तकाज़ा, वर्तमान की चुनौती को समझें, स्वीकार करें और अपनी संस्थाओं में ऐसी व्यवस्था बनायें कि हमारे छात्र–छात्राएं आधुनिक शिक्षा के साथ–साथ आर्य पद्धति से भी परिचित हों। आवश्यकता पड़ने पर वैदिक धर्म के प्रचारकों की भूमिका भी अदा कर सकें। यदि डी.ए.वी. ऐसा कर पाया तो अपने त्यागी तपस्वी प्राचार्य महात्मा हंसराज और हम सबके आदरणीय गुरुवर महर्षि दयानन्द के ऋण से बड़ी हद तक अनृण हो जाएगा। यह बहुत ही पुनीत कार्य है, डी.ए.वी. इसे कर भी सकता है, इस पर गंभीरता पूर्वक विचार होना चाहिए।

3. हमारी युवा पीढ़ी हमारे अपने आदर्शों से दूर होती जा रही है। बातों से कुछ नहीं होने वाला। हमारे घरों में यज्ञ को स्थान मिले, स्वाध्याय की परंपरा हो, हमारे जीवन में वैदिक सिद्धांतों की छाप स्पष्टतया परिलक्षित हो, हम आस्तिक हैं, वेदानुयायी हैं, ऋषियों के पथ के पथिक हैं आदि–आदि बातों को प्रामाणिकता से दूसरों तक पहुंचाकर उनको प्रभावित कर सकें तब जाकर कहीं हमारी सन्तान तथा अन्य लोग हमारे साथ जुड़ेंगे, हमारी बात मानेंगे।

यह भी स्मरण रहे कि महर्षि दयानंद स्वामी श्रद्धानंद, पं. लेखराम, लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज, पं. गुरुदत्त आदि श्रद्धा और समर्पण भाव की देन होते हैं, कोरा पठन–पाठन, सिद्धांत ज्ञान, या कोई यान्त्रिक शिक्षा पद्धति उच्च उच्चकोटि के विद्वान, प्रचारक आदि पैदा नहीं कर सकती। इसलिए श्रद्धा और समर्पण भाव हम सबमें होना ही चाहिए।

आशा है कि हमारा बुद्धिजीवी वर्ग, हमारे जिम्मेवार अधिकारी एवं नेतागण, सभी श्रद्धालु आर्यजन इन सुझावों पर विचार करेंगे और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के वैदिक उद्घोष को साकार रूप देने के लिए कोई न कोई ठोस, सार्थक योजना अवश्य बनाएंगे।

प्रो. ओम कुमार आर्य
जवाहर नगर पटियाला चौक जींद
09416294347

****

☞ पृष्ठ 08 का शेष

ईसाई-मत में स्वर्ग की ...

अर्थ दु:ख हुआ क्योंकि नरक शब्द स्वर्ग का विपरीतार्थक है। रामायण के सुप्रसिद्ध टीकाकार गोबिन्दराज ने नरक का अर्थ इस प्रकार किया है- **अत्र नरक: शब्देन दु:खं लक्ष्यते**- यहाँ नरक का शब्द का अर्थ दु:ख है। महर्षि यास्कजी ने निरूक्त में लिखा है- नरकंन्यरकं नीचैर्गमनम् इति वा।(1-3-11) अर्थात् दु:ख, अध:पतन या अवनति का नाम नरक है। नरक का सीधा का अर्थ है- नीचे जाना, पतन का लोक, निरूक्त में भी कहा है- नीचे जाना, सुख का अभाव।

स्वर्ग तथा मुक्ति के लिए वेदों में अन्य शब्द भी आए हैं- **'सुकृतस्य लोके'** (ऋ.10-85-24) अर्थात् पुण्य कर्मों के लोक में। **'अमृतस्य लोके'** (ऋ.10-85-20) अर्थात् अमर लोक में प्रविष्ट हों। निरूक्त में (2-14) भी स्वर्ग के पर्यायवाची नाम, द्यौ तथा सुकृतस्य-लोक दिए है। मीमांसा में (6-1-1) 'स्वर्ग' सुख को माना गया है। स्वर्ग शब्द से स्थान-विशेष व वस्तु विशेष का ग्रहण मीमांसा को स्वीकार्य नहीं है। वेद के अनेक मंत्रों में द्यौलोक, ब्रह्मलोक, मोक्ष तथा सुकृत आदि की चर्चा की गई है। **....बृहस्पतेरूत्तमं नाकंऽरूहेयम्, इन्द्रस्योत्तमं नाकं ऽरूहेयम्....**(यजु09. 10) बृहस्पति और इन्द्र अर्थात् जो ज्ञानवान् व जितेन्द्रिय को विशेष स्वर्ग मिलता है, वह मुझे प्राप्त हो। महर्षि दयानन्द जी ने नाक:(यजु015-49) को मोक्ष सुख लिखा है। **असौ स्वर्गीय लोकाय स्वाहा।:** (यजु035-22) यहाँ पर महर्षि ने स्वर्ग का अर्थ भी मोक्ष-सुख किया है। **स्वर्गलोके:** (यजु023-20) सुखमय लोक। **सुकृतस्य लोके।** (यजु015-50) पुण्य कर्मों से अर्जित लोक। **येन स्व: स्तभितं येन नाक:** (यजु032-6) यहां पर स्व: का अर्थ सुख तथा नाक: का अर्थ सब दु:खों से रहित मोक्ष किया है। महर्षिजी ने बहुत से स्थानों पर **अमृतम्** का अर्थ भी (यजु032-10,25-13) मोक्ष सुख किया है। अमरकोश के अनुसार-**स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदशालया:। सूरलोको द्यौर्दिवो द्वेस्त्रियां त्रिविष्टपम्।।** (16) अर्थात् स्व:, अव्यय, स्वर्ग, नाक, त्रिदिव, त्रिदशालय, सुरलोक, द्यौ, दिव: और त्रिविष्टप आदि शब्द एक ही पदार्थ के वाचक है। स्वर्ग किसे प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में आया है-**अविन्दद् दिवो....इन्द्र: परीवृता द्वार इष: परीवृता:।।** (ऋ.01-130-3) ज्ञानी पुरुष शरीरस्थ प्रभु का दर्शन करता है, जितेन्द्रिय बनकर वह प्रभु-प्रेरणा को सुनता है और स्वर्गद्वारों को खोलने वाला होता है। **एकस्मै स्वाहा द्वाभ्यांस्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्टमै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा।।** (22-34) एक परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्तुति, प्रार्थना, उपासना और पुरूषार्थ करो। मन और जीवात्मा दोनों की शुद्धि के लिए स्तुति, प्रार्थना, उपासना और पुरुषार्थ करो। शतवर्ष की आयु को प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करो। एक सौ प्रणव-जप और गायत्री-जप के लिए तत्पर रहो। अन्धकार दूर करके प्रकाश की प्राप्ति के लिए प्रयास करो। अन्धकार दूर करके प्रकाश की प्राप्ति के लिए प्रयास करो। स्वर्गप्राप्ति के लिए प्रयास करो।

महादेव,
सुन्दरनगर-174401, हि.प्र.

☞ पृष्ठ 09 का शेष

प्रार्थना-पुरुषार्थ

है जैसे' हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझको सबसे बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे अधीन सब हो जाएँ। ऐसी मूर्खता पूर्ण प्रार्थनाओं को भी ईश्वर स्वीकार नहीं करता – हे परमेश्व! आप हमको रोटी बना कर खिलाइए, मकान में झाड़ू लगाइए, कपड़े धोइए और खेती बाड़ी भी कीजिये'। परमेश्वर की आज्ञा तो सदा पुरुषार्थ करने की है। परमेश्वर की आज्ञा पालन में सुख है।

प्रार्थना क्या करें अर्थात प्रार्थना में क्या मांगे-यह प्रार्थना विज्ञान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है। हम प्रभु से धन, सम्पत्ति, सुख के साधन, उत्तम स्वास्थ्य , दीर्घायु, बल, बुद्धि , यश विजय आदि सभी कुछ माँग सकते हैं एवं माँगते भी रहते हैं किन्तु ये सब वस्तुएँ ऐसी हैं कि जिनसे मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं होती है। ऋषि दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं कि ''जब-जब परमेश्वर की प्रार्थना करनी योग्य हो, तब-तब अपने लिए वा और के लिए समस्त शास्त्र के विज्ञान से युक्त उत्तम बुद्धि ही माँगनी चाहिए, जिसके पाने पर समस्त सुखों के साधनों को जीव प्राप्त होते हैं। ''मेधा बुद्धि ही हमारे प्रसुप्त विवेक को जागृत करती है और हमें सांसारिक प्रलोभनों से ऊपर उठाती है विवेकशील व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं की अपेक्षा प्रभु की प्रसन्नता पाने को अधिक उत्सुक रहता है। अत: ईश्वर से प्रतिदिन सद्बुद्धि की प्रार्थन प्रार्थना करें।

ओ३म् भूर्भुव: स्व:।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो न: प्रचोदयात्।
ओ३म् विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव।
यद् भदंतन्न आसुव।।

876/7 करनाल 132001
मो. 9416801757

पौराणिक शैली से सतर्क और सजग रहना होगा उपदेशकों को

महर्षि जी के उपदेशों तथा उनकी वाणी की महत्ता ऐसे पुरुषों द्वारा सुनिए जिन्होंने उनके दर्शन करके उपदेशों का पीयूष साक्षात् पीया

1. ''स्वामी दयानन्द जी उत्तम रसमय वाणी के वक्ता थे। उनकी वाणी गम्भीर थी, उसी प्रकार उनकी भाषण-पद्धति अत्यन्त मार्मिक व कभी-कभी आलंकारिक हो जाती थी इसी कारण उनके भाषण सुनने हेतु एकत्रित श्रोतागण तल्लीन हो जाते थे।'' (महादेव गोविन्द रानाडे की पत्नि श्रीमती रमाबाई की आत्मकथा से)।

महर्षि दयानन्द जी के इन उपदेशों से स्पष्ट है कि महर्षि जी विषय का निर्धारण करके उसी का प्रतिपादन किया करते थे और दूसरे दिन भी उसी से सम्बद्ध शंकाओं का समाधान थी किया करते थे। परन्तु आजकल उपदेशों की शैली महर्षि जी से भिन्न हो गई है। वेदोपदेश के नाम से कोई भी मन्त्र पढ़ा और उपदेश प्रारम्भ कर देते हैं। उसका मन्त्र से कोई सम्बन्ध है या नहीं इसका ध्यान नहीं रखा जाता। केवल मात्र श्रोताओं का मनोरंजन करना अथवा उनका ध्यान आकृष्ट करना मात्र ही उपदेष्टा का प्रयोजन होता है। अथवा उपदेश में यह भी देखा जाता है वक्ता ने मन्त्र के किसी एक पद अथवा किन्हीं पदों को लेकर ही समस्त उपदेश कर दिया, चाहे वह अर्थ मन्त्र के दूसरे पदों तथा देवता से संगत हो या नहीं। मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय देवता की तो प्राय: उपेक्षा ही कर दी जाती है।

अत: वेदोपदेशकों तथा आर्यपुरोहितों को योग्य है कि वे महर्षि जी की शैली को ही उपदेश के लिए अपनाएँ। यह तो ठीक है कि महर्षि जी की शैली को अपनाने में भूरिश्रम की आवश्यकता होगी। एक विषय के उपदेश के लिए शास्त्रों का अध्ययन तथा गम्भीर चिन्तन भी करना होगा। किन्तु वेदों को गौरव तथा मानव-हित महर्षि जी की शैली में निहित है। अन्यथा वेद का तो नाम मात्र ही रह जायेगा, उस स्थान पर पौराणिक शैली ही आ रही है। आर्यों को इसके लिए सतर्क एवं सजग रहना चाहिए।

रघुनन्दन प्रसाद आर्य
आर्य समाज, सरदार पटेल मार्ग
खलासी लाइन, सहारनपुर

दयानन्द मॉडल स्कूल, जालंधर में मनाया गया महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण दिवस

दयानन्द मॉडल स्कूल, मॉडल टाउन जालंधर में महर्षि दयानन्द सरस्वती के निर्वाण दिवस पर उनके जीवन पर उनके जीवन चरित्र, जीवन मूल्यों व मान्यताओं पर प्रकाश डालते हुए प्रश्नोतरी प्रतियोगिता करवाई गई। इस प्रतियोगिता में छठी व सातवीं कक्षा के विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक हिस्सा लिया।

इस प्रतियोगिता के माध्यम से विद्यार्थियों ने स्वामी जी के जीवन सिद्धांतो व वेदों द्वारा दी गई शिक्षाओं का ज्ञान प्राप्त किया तथा जीवन में सदा सत्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त की।

प्रतियोगिता के अंत में स्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री विनोद कुमार जी ने बताया कि डी.ए.वी. संस्थाए महर्षि दयानन्द जी की हमारे देश को अनमोल देन हैं। हम स्वामी जी को समाज सुधारक व युग-प्रवर्तक के रूप में हमेशा स्मरण करते रहेंगे व अपने जीवन को भी उनके बताए हुए सत्य व सन्मार्ग पर चलकर श्रेष्ठ बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहेंगे।

thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2015-17
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 31/12/2014 To 01/01/2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

वैशाली नगर जयपुर में डी.ए.वी. नेशनल स्पोर्ट्स-2014 सम्पन्न

डी.ए.वी. सेन्टेनरी पब्लिक स्कूल वैशाली नगर जयपुर में आयोजित राष्ट्रस्तरीय त्रिदिवसीय डी.ए.वी. नेशनल स्पोर्ट्स-2014 प्रतियोगिताएँ भव्य सफलता के साथ सम्पन्न हुईं। इस महाक्रीडोत्सव में पूरे भारत में फैली लगभग 850 डी.ए.वी. संस्थाओं के 13 क्षेत्रों के 164 विद्यालयों से आए लगभग 1500 खिलाड़ियों ने अपनी-अपनी खेल प्रतिभा का प्रदर्शन किया। प्रतिभागियों के साथ लगभग 230 खेल प्रशिक्षक व टीम प्रबन्धक सम्मिलित हुए। खेलों के इस महाकुम्भ में क्रिकेट, फुटबॉल, टेबल-टेनिस, लॉन-टेनिस, योग, हॉकी, खो-खो, बास्केटबॉल, हैण्डबॉल, चैस, बैडमिन्टन, स्विमिंग, वॉलीबॉल, कबड्डी, जूडो, तीरन्दाजी, तैराकी, एवं एथलेटिक्स समेत कुल 19 प्रतिस्पर्धाएँ सम्मिलित थीं।

इस प्रतियोगिता के उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि माननीय डॉ. एस.के. सामा, उपप्रधान डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली ने इस राष्ट्रीय प्रतियोगिता का उद्घाटन किया। विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री रवीन्द्र कुमार, सचिव, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली श्रीयुत महेश चोपड़ा, अवैतनिक कोषाध्यक्ष, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली, उपस्थित रहे। संयोजक डी.ए.वी. नेशनल स्पोर्ट्स, ने सभी का स्वागत किया तथा डी.ए.वी नेशनल स्पोर्टस का परिचय दिया।

मुख्य अतिथि डॉ. एस.के. सामा जी ने अपने उद्बोधन में सुन्दर, सुव्यवस्थित व भव्य आयोजन के लिए विद्यालय के प्राचार्य श्री अशोक कुमार शर्मा की भूरि-भूरि

प्रशंसा करते हुए उद्घाटन सत्र के दौरान प्रस्तुत सभी कार्यकमों की सराहना की। मुख्य अतिथि ने स्वास्थ्य के वैज्ञानिक आधारों पर खेलों के महत्व पर प्रकाश डाला और प्रतिभागी खिलाड़ियों को शुभ कामनायें दीं। प्रिंसिपल जे.पी.शूर जी ने इस विशाल एवं भव्य आयोजन व कुशल प्रबन्धन के लिए प्राचार्य व उनके समस्त स्टाफ की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

इस अवसर पर श्रीमान एस. के. शर्मा जी ने विगत वर्ष इसी प्रांगण में आयोजित अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के अत्यन्त सफल आयोजन को स्मरण कराते हुए प्राचार्य श्री अशोक कुमार शर्मा को इस विशाल क्रीडोत्सव के भव्य आयोजन के लिए बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्त्व बताते हुए विद्यालय के समस्त आयोजक मण्डल को बधाइयाँ दीं।

इस अवसर पर विद्यालय के छात्र-छात्राओं द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने सबका मन मोह लिया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देश का नाम उज्ज्वल करने वाले राजस्थान के कुछ खिलाड़ियों को अंग-वस्त्र, श्रीफल व प्रशस्ति-पत्र आदि देकर सम्मानित करने से यह आयोजन और गरिमामय बन गया। गुरु द्रोणाचार्य सम्मान प्राप्त श्री आर डी सिंह दक्षिण कोरिया में सम्पन्न एशियन गेम्स-2014 में तीरन्दाजी में स्वर्ण पदक विजेता श्री रजत चौहान, कबड्डी में सुश्री सुमित्रा शर्मा व ग्लास्गो में आयोजित कॉमनवेल्थ खेलों की पिस्टल शूटिंग प्रतियोगिता में स्वर्ण पदक विजेता सुश्री अपूर्वी चन्देला ने मुख्य अतिथि माननीय से सम्मान ग्रहण किया।

खेलों के इस महाकुम्भ में पंजाब जोन ने सर्वोत्तम प्रर्दशन करते हुए गेम्स व एथलेटिक्स की ओवर ऑल चैम्पियनशिप पर कब्जा जमाया जबकि दिल्ली व राजधानी क्षेत्र द्वितीय स्थान पर रहा। तीसरा स्थान हरियाणा ने प्राप्त किया। सर्वश्रेष्ठ एथलीट का खिताब दिल्ली के सजल कुमार ने प्राप्त किया।

सवाई मानसिंह स्टेडियम, जयपुर में आयोजित समापन सत्र डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली के माननीय उपप्रधान श्रीयुत श्रीदीप ओमचारी जी के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ, जिसमें एथलैटिक्स के साथ ही सर्वविजेता, उपविजेता व सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी के पुरस्कार वितरित किए गए। प्राचार्य श्री अशोक कुमार शर्मा ने इस सफल आयोजन में सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त किया। अन्त में, राष्ट्र स्तरीय त्रिदिवसीय डी.ए.वी. नेशनल स्पोर्ट्स-2014 के समापन की विधिवत घोषणा के साथ खेलों के इस महाकुम्भ का सफलता पूर्वक समापन हो गया।

डी.ए.वी. कोटा ने आर्य समाज से किया स्वच्छता अभियान का शुभारम्भ

डी.ए.वी. विद्यालय के आर्य युवा शक्ति बिग्रेड के बच्चों ने आर्य समाज, विज्ञान नगर, में सफाई की व आर्य समाज परिसर में उगी घास व झाड़ियों को काट कर सफाई की।

इस अवसर पर आर्य समाज के जिला प्रधान अर्जुन देव चड्ढा डी.ए.वी. की प्राचार्या श्रीमती सरिता रंजन गौतम, डॉ.के.एल. दिवाकर के नेतृत्व में विद्यार्थियों व अध्यापक-अध्यापिकाओं ने चार घंटे तर पूरे परिसर की सफाई की। अतिथियों ने श्रमदान करने की व सफाई रखने की प्रेरणा दी। उपस्थित सभी ने ओ३म् के केसरिया कैप लगा कर सफाई अभियान में भागीदारी निभाई।

स्वच्छ भारत, स्वच्छ शहर, स्वच्छ विद्यालय की परिकल्पना को साकार करने के लिए डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, कोटा में 1000 से अधिक विद्यार्थियों व शिक्षकों ने झाड़ू लेकर आसपास के परिवेश व तलवण्डी, कोटा में सफाई पर निकले और देखते ही देखते सब ओर स्वच्छता दिखाई देने लगी। बच्चों ने घर-घर जाकर स्वच्छता के महत्व को आमजन तक पहुंचाया।

कार्यक्रम का शुभारंभ विद्यालय प्राचार्या सरिता रंजन गौतम ने बच्चों व शिक्षकों को शपथ दिलवाकर किया और सभी को स्वच्छता की मुहिम में सम्मिलित होने का संकल्प दिलाया।

पिलखुआ की कु.रितु को लगे पंख

सी.बी.एस.ई द्वारा आयोजित 'उड़ान' प्रोजेक्ट में समस्त भारत से 946 छात्राओं का चयन किया गया जिसमें लाला शम्भू दयाल डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पिलखुवा की छात्रा रितु तोमर ने अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर विद्यालय को गौरवान्वित किया। कु.रितु को टेबलेट, पाठन सामग्री, बैग, भोजन सुविधा एवं IIT के लिए तैयारी की निःशुल्क व्यवस्था कराई गई। छात्रा ने शिक्षा मन्त्री स्मृति ईरानी के स्वप्न को भी आकार प्रदान किया। विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती रेखा मोहिले ने भी छात्रा के उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.**, डब्ल्यू-30, ओखला, फेस-II, नई दिल्ली-110020 (दूरभाष : 26388830-32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.-9868894601 सम्पादक - **पूनम सूरी**